भारत विभाजन और हिन्दी उपन्यास

भारत विभाजन और हिन्दी उपन्यास

हरियश

अनन्य प्रकाशन

प्रथम संस्करण 1986
प्रकाशक अनन्य प्रकाशन
सी 6/128 सी लारेंस रोड, दिल्ली-110035
मूल्य 35 रुपये
मुद्रक तरुण प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली 110032
सहयोग भारती अग्रवाल

स्मृति शेष पिता
श्री जसवत राय को

भूमिका

उन्नीस सौ सैंतालीस में हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दो आजाद मुल्क अस्तित्व में आए। इन दोनों मुल्कों का जन्म संयुक्त भारत का विभाजन करके किया गया और इस विभाजन की जमीन अठारह सौ सत्तावन से बननी तयार हो गई थी, जब हिन्दू और मुसलमान एकजुट होकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ उठ खड़े हुए थे। यह बगावत तो असफल रही लेकिन मुसलमानों के प्रति ब्रिटिश शासकों की नीति में व्यापक और बुनियादी परिवतन हुए। ऐसी नीतियां बनाई गईं जिससे मुसलमान आर्थिक दृष्टि से उपेक्षित रह गए। दूसरी ओर हिन्दू राष्ट्रवाद को उभारने के लिए व हिन्दुओं को मुसलमानों से श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए 1858 में महारानी विक्टोरिया ने अनेक कदम उठाए। आगे चलकर 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना करवाई गई जिसने 1940 में पाकिस्तान की मांग सामने रखी। दूसरी ओर क्रांतिकारी शक्तियां काफी तेजी के साथ संगठित होती जा रही थीं। कांग्रेस इन शक्तियों के चरित्र को समझ रही थी, इसलिए उसने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से सौदेबाजी करनी चाही और अपने वर्ग को बचाने के लिए उनसे मिलकर ऐसी रणनीति तैयार की, जिसका उद्देश्य जनअसंतोष को क्रांतिकारी रूप धारण करने से रोकना था। मुस्लिम लीग भी इन क्रांतिकारी शक्तियों को देख रही थी और समझ रही थी कि यदि कोई तात्कालिक हल न निकाला गया तो क्रांतिकारी शक्तियां ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ-साथ उसके वर्ग को भी ध्वस्त कर देंगी इसलिए उसने पाकिस्तान की मांग की ओर जोर दिया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद भी इस तथ्य से परिचित था और यदि ऐसा हो जाता है तो भारत से उसकी सामाजिक, आर्थिक पकड़ हमेशा के लिए छूट जाएगी। इसलिए भारत पर आर्थिक पकड़ बरकरार रखने के लिए उसने देश का विभाजन किया। विभाजन एक हादसे के रूप में देश की जनता पर गुजरा। विभाजन के साथ ही सम्प्रदाय के आधार पर जनता की अदला-बदली जुड़ी हुई थी जिससे दोनों देशों को अनेक आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। इन समस्याओं का प्रभाव शरणार्थियों के जीवन पर स्थाई रूप से पड़ा जिससे उनके सोचने-समझने की दृष्टि में बुनियादी परिवतन हुए। चूंकि जनता का स्थानांतरण सम्प्रदाय के आधार पर किया गया था इसलिए साम्प्रदायिक दंगे, हिंसा, सामूहिक आक्रमण, रेलगाड़ियों में कत्ल आम, धर्म परिवतन आदि की घटनाएं व्यापक स्तर पर हुईं जिससे जनचेतना पर गम्भीर रूप से प्रभाव पड़ा। हिंदी उपन्यास साहित्य में इन सन्दर्भों की अभिव्यक्ति अपनी पूर्ण समग्रता के साथ हुई है।

—हरियश

क्रम

1 1857 का विद्रोह : विभाजन की साम्प्रदायिक पृष्ठभूमि और उसका विकास 9

2 विभाजन और साम्प्रदायिक संदर्भ 24

3 हिन्दी उपन्यास : विभाजन युगीन साम्प्रदायिकता की अभिव्यक्ति 27

1857 का विद्रोह विभाजन की साम्प्रदायिक पृष्ठभूमि और उसका विकास

हिन्दुस्तान का बटवारा द्विराष्ट्रीय सिद्धात को आधार बनाकर किया गया था। मुस्लिम लीग की यह दलील थी कि हिन्दू और मुस्लिम दो अलग अलग सस्कृतिया हैं, अलग-अलग जीवन दृष्टियां हैं और दोनो के रहन सहन अलग-अलग हैं जबकि हकीकत यह थी कि दोनो सम्प्रदाय ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शोषण के प्रचण्ड शिकार थे और इससे मुक्ति पाने के लिए 1857 मे दोनो सम्प्रदाय इसके विरुद्ध उठ खडे हुए थे। 1857 के समय के बाद सुनियोजित ढग से साम्प्रदायिक प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन दिया गया और वे सदभ पैदा किए गए जिनके कारण हिदुस्तान के इतिहास को देश के बटवारे की ओर मोड दिया गया।

1857 का विद्रोह अपने अधिकारो की सुरक्षा के लिए भारतीय सामतो द्वारा किया गया विद्रोह था। अग्रेजो के आने से पहले पश्चिम से जो हमलावर आए थे उनम और अग्रेजो मे मूलभूत अन्तर था। मुसलमानो ने जब भारत पर विजय प्राप्त की थी तब सिफ राजनतिक सत्ता हिदू सामतो के हाथो से निकलकर मुस्लिम सामन्तो के हाथो मे आई थी लेकिन भारत की आर्थिक व्यवस्था व उत्पादन सम्बधो पर कोई प्रभाव नही पडा था। ऐसा इसलिए हो सका था क्योकि वे हमलावर आर्थिक विकास के क्षेत्र मे भारतीय सामतो से पिछडे हुए थे और जिस समाज मे वे रहते आए थे वह अधविकसित सामन्ती समाज था। लेकिन अग्रेजो की स्थिति पहले वाले हमलावरो से भिन्न थी। उस समय ब्रिटेन म पूजीवाद का पूण विकास हो चुका था और उसकी पूजीवादी अथव्यवस्था ने भारतीय सामती अथव्यवस्था को छिन्न भिन्न कर दिया था। उनके लिए ऐसा करना इसलिए आवश्यक था कि वे एक व्यापारी के रूप मे भारत आये थे और बिना इसके वे भारत का पूणरूप से शोषण नही कर सकते थे।

अग्रेजो न कच्चे माल की अपनी आवश्यकता के लिए भारत के कृषि

उत्पादनो को विकृत किया और उन वस्तुओं के उत्पादन पर जोर दिया जो ब्रिटिश उद्योगों के लिए अनिवार्य थी। उन्होंने अपने कानूनों का आधार लेकर देशी राजाओं की शक्ति को नष्ट किया व नई राजस्व व्यवस्था लागू की जिसके कारण किसानों की स्थिति बिगडती चली गई। दूसरी ओर ब्रिटिश मशीनों से बनी चीज़ें तेजी से भारतीय बाजारों में पहुचने लगी जिससे भारी संख्या में भारतीय-हस्तशिल्प बर्बाद हुए। इस शोषण के खिलाफ भारतीय सामन्तों ने मिल जुलकर आवाज उठाई।

इस विद्रोह का एक धार्मिक कारण भी था। 1858 में सर सैयद अहमद ने 'रिसाला असबाब ए बगावत ए हिन्द' नामक एक सर्कुलर जारी किया जिसमें उन्होंने बताया कि ईसाई प्रचारकों द्वारा मुसलमानों को अपने धर्म में लेने के कारण मुसलमान ईस्ट इण्डिया कम्पनी से असन्तुष्ट थे और यह मानते थे कि अंग्रेज शासक छल और कपट से समय आने पर मुसलमानों की गरीबी और उनके भोलेपन का फायदा उठाते हुए उन्हें ईसाई धर्म का जामा पहना देंगे। सर्कुलर में यह भी कहा गया था कि सन 1837 में बगाल में ईसाइयों ने अनाथ बालकों के भोलेपन का फायदा उठाकर उन्हें ईसाई धर्म में मिला लिया था।

अपने धर्म के प्रति कट्टरपंथी होने के कारण भारतीय मुस्लिम सामन्तों में ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध घृणा फैली और उन्होंने इस विद्रोह में हिस्सा लिया।

लेकिन इस विद्रोह के नेताओं के पास न तो कोई राष्ट्रीय स्वरूप था और न ही कोई राष्ट्रीय कार्यक्रम, जिसके तहत राजतंत्र की स्थापना की जा सके। इसे व्यापक जन समर्थन भी नहीं मिल सका। लिहाजा इस विद्रोह ने अपनी गद्दी से हटाए गए रजवाड़ों की असंगठित भीड़ के आक्रोश को ही अभिव्यक्त किया। अपनी असफलता के बावजूद इस विद्रोह का बहुत बड़ा सकारात्मक पक्ष यह था कि पहली बार हिन्दू और मुसलमानों ने एकजुट होकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ अपनी जंग का एलान किया था।

चूंकि विद्रोह का नेतृत्व मुसलमानों ने किया था, इसलिए मुसलमानों के प्रति ब्रिटिश सरकार की नीति में व्यापक और बुनियादी परिवर्तन हुए। ऐसी नीतियां व्यवहार में लाई गई जिनमें मुसलमान आर्थिक दृष्टि से उपेक्षित और पिछडे रह जाए। नई नीतियों के परिणामस्वरूप मुसलमानों को नई शिक्षा पद्धति और फौज के ऊंचे पदों से अलग रखा गया। इससे मुसलमानों की आर्थिक स्थिति प्रभावित हुई क्योंकि फौज में भरती होना मुसलमानों का प्रमुख पेशा था। सरकार सरकारी अधिसूचनाओं द्वारा मुसलमानों को जान बूझकर सरकारी नौकरियों से अलग कर रही थी।

एक तरफ ब्रिटिश साम्राज्यवादी, मुसलमानों को उपेक्षित करने के लिए नई नई नीतियां बना रहे थे तो दूसरी ओर हिन्दू राष्ट्रवाद को उभारने के लिए

महारानी विक्टोरिया द्वारा नये नये कदम उठाये जा रहे थे। 1857 के सघर्ष मे हिन्दुओ और मुसलमानो की पारस्परिक एकता और साम्राज्य के लिए आसन्न सकट को देखते हुए 1858 मे महारानी विक्टोरिया द्वारा भारत के सम्बन्ध मे अनेक परिवतन किए गए, जिनका सकेत एम० एन० राय ने अपनी पुस्तक 'फ्रीडम मूवमेण्ट एण्ड इण्डियन मुस्लिम' मे किया है। इसमे मुसलमानो को प्रशासनिक पदों पर न लेना, उच्च ब्राह्मण, गैर-ब्राह्मण तथा चाण्डाल जातियो मे वैमनस्य का बीज बोना, भारतीय सामन्ती ढाचे को बरकरार रखना आदि प्रमुख थे। एम० एन० राय के अनुसार, "इसी समय स्वामी दयानद सरस्वती ने हिन्दुओ की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए आय समाज की स्थापना की। हिन्दुओ के वेद, उपनिषद व अन्य धमग्रन्थो को श्रेष्ठ कहा गया। बकीम चन्द्र चटर्जी, विवेकानन्द आदि की महत्ता स्थापित की गई। यह नीतिया दोनो तरफ प्रहार करने वाली थी। एक तरफ हिन्दू राष्ट्रवाद का गुणगान किया गया, हिन्दुओ की महत्ता प्रतिपादित की गई तो दूसरी तरफ मुसलमानो को शिक्षा, नौकरी-व्यवसाय आदि के क्षेत्र मे वचित रखा गया।

इतिहास की दौड मे मुसलमान समय के साथ नही चल सके। इसका कारण, उनका अपना पिछडापन और अपने धम का सामाजिक विकास की गति मे तालमेल न बिठाना भी था। अग्रेजो ने उनकी इस मानसिकता को और बढावा दिया। अग्रेज, मुसलमानो से इसलिए भी खफा थे क्योकि मुसलमानो ने ही बहावी विद्रोह का नेतृत्व किया था। लिहाजा अग्रेजो ने शासन, शिक्षा, नौकरी तथा व्यवसाय मे ऐसी नीतिया बनाई जिनमे मुसलमान उपेक्षित रह गए। इसी समय ब्रिटिश शासको ने शिक्षा मे 'अग्रेजी' को अनिवाय बना दिया। इससे मूलभाषा उर्दू और फारसी का महत्त्व कम होने लगा। मुसलमान नई शिक्षा पद्धति मे अपने आपको नही ढाल सके। इसके विपरीत हिन्दू एक ओर तो कानूनी, डाक्टरी और प्रशासनिक पदो मे प्रतिष्ठित होने लगे और दूसरी ओर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के नेता और अगुआ भी बनने लगे।

मुसलमानो को आगे बढाने और हिन्दुओ की बराबरी करने म सर सैयद अहमद खा ने महत्त्वपूण भूमिका निभाई। 1885 मे काग्रेस की स्थापना के समय पर सर सैयद अहमद खा के मन मे यह भय पदा हो गया था कि काग्रेस मूलत हिन्दुओ की पार्टी है और यदि यह सत्ता मे आती है तो मुसलमानो के प्रति ईमानदार नही रहेगी। लिहाजा उन्होने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस का तीव्र विरोध किया और ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति वफादार रहने की कसमे खाई। उन्हें इस बात का भी भय था कि यदि अग्रेजो ने उनकी मदद नहीं की तो हिन्दू अपनी श्रेष्ठतम शिक्षा और आर्थिक प्रगति से उन्हें दबा देंगे। इसलिए उनका प्रमुख उद्देश्य मुसलमानो को अग्रेजी ढग की शिक्षा, यूरोपीय साहित्य, विज्ञान और तकनीकी ज्ञान

करवाना था, इसके लिए उन्होंने 1863 में साइंटिफिक सोसायटी बनाई, जिसका उद्देश्य विभिन्न प्रकार के अंग्रेजी ग्रन्थों का उर्दू में अनुवाद उपलब्ध करवाकर मुसलमानों को पश्चिमी ढंग से शिक्षित करना था, जिससे उनकी जाति कमजोर और पिछड़ी न रह जाये।

सर सैयद अहमद खां ने 1888 में संयुक्त भारत देशभक्त संस्था की स्थापना की, जिसका उद्देश्य इंग्लैण्ड की संसद को यह आश्वस्त कराना था कि सभी वर्गों के मुसलमान, कांग्रेस के विरोधी हैं। इसी क्रम में मुसलमानों को आगे ले जाने के लिए उन्होंने अलीगढ़ में 'मोहम्मडन एंग्लो ओरियंटल कालेज' की स्थापना की थी। वस्तुतः सर सैयद अहमद जिन मुसलमानों की वकालत किया करते थे उनमें मुट्ठी भर धनवान मुस्लिम ही शामिल थे। दूसरी तरफ हिन्दू भी अपने व्यापार में धन लगाने के लिए ब्रिटिश शासकों की तरफ ललचाई दृष्टि से देखा करते थे जिसके फलस्वरूप वह जमीन तैयार हो गई जिस पर हिंदू और मुसलमानों की कटुता के बीज आसानी से बोये जा सकें।

इस वैमनस्य को और तीव्र एवं पेचीदा बनाने के लिए ब्रिटिश इतिहासकारों ने साम्प्रदायिक संदर्भों में इतिहास की व्याख्या प्रस्तुत की। भारतीय ऐतिहासिक चिन्तन को प्रभावित करने के लिए जेम्स मिल ने ब्रिटिश भारत का इतिहास लिखा जिसमें अतीत की घटनाओं को नवीन साम्प्रदायिक संदर्भों में देखा गया। जेम्स मिल ने भारतीय इतिहास के तीन कालों को हिन्दू सभ्यता, मुस्लिम सभ्यता और ब्रिटिश सभ्यता के रूप में विभाजित कर साम्प्रदायिक दृष्टिकोण का परिचय दिया। बाद के इतिहासकारों ने भी प्राचीनकाल को हिन्दू काल और मध्य काल को मुस्लिम काल के नाम से पुकारा। मध्य काल को मुस्लिम काल मान लेने का आशय यह है कि सभी शासक मुसलमान थे और सारी प्रजा हिन्दू। आगे आने वाले इतिहासकारों ने भी एक ओर मुस्लिम शासन, मुस्लिम धर्म और मुस्लिम दृष्टि को आधार बनाकर इतिहास लिखा तो दूसरी ओर ब्राह्मण धर्म, ब्राह्मण शासन और ब्राह्मण वादी दृष्टिकोण को प्रचारित किया।

अतीत का गौरवगान करने के लिए एवं साम्प्रदायिक चेतना फैलाने के लिए इतिहासकारों ने मिथकों का नये साम्प्रदायिक संदर्भों में प्रस्तुत किया। यह प्रचार किया गया कि भारतीय समाज और भारतीय संस्कृति प्राचीन काल में श्रेष्ठ थी और मुसलमानों की लूट के कारण भारत की सोने की चिड़िया उड़ गई। इसे प्रचारित करने का उद्देश्य सिर्फ इतना था कि मुसलमानों को भारत की लूट का दोषी ठहरा जाये और हिन्दुओं के मन में उनके प्रति घृणा फैलाई जाये।

इसी प्रकार एक अन्य मिथक द्वारा यह साबित किया गया कि भारत में मानवीय सभ्यता आदि रूप में पनपी, इसके लिए यह दलील दी गई कि भारतीय प्रतिभा आध्यात्मिकता में निहित है और इसलिए वह पश्चिम की तमाम सभ्य-

ताओ से श्रेष्ठ है। भारत को जगतगुरु घोषित किया गया और यह कहा गया कि भारत मे भी परमाणु बमो और विमानो का अस्तित्व था। इसके लिए रामायण और महाभारत जैसे ग्रथो का सहारा लिया गया। जिसका मूल उद्देश्य यह था कि भारतीय अब दरिद्र और दीन हो गए हैं। हमारा आर्थिक विकास रुक गया है और हमारी दरिद्रता के जिम्मेदार हैं मुसलमान।

इस प्रकार इतिहास की साम्प्रदायिक व्याख्या द्वारा भारतीय जनमानस मे उस साम्प्रदायिक दृष्टिकोण का प्रचार किया गया जो आगे चलकर साम्प्रदायिक भेद भाव का मूल आधार बना। इस भेद-भाव को आगे बढाने के लिए सुनियोजित और सुव्यवस्थित ढग से मुस्लिम लीग की स्थापना कराई गई, जिसने आगे चलकर पाकिस्तान की माग सामने रखी।

दरअसल बहुत पहले से ही सर सैयद अहमद खा काग्रेस का विरोध करते आ रहे थे। वे 'हिन्दू पार्टी' कहकर इसकी निंदा किया करते थे। उन्होंने प्रारम्भ से ही मुसलमानो को राष्ट्रीय काग्रेस स अलग रखने का प्रयास किया और इसमे वे काफी हद तक सफल भी हुए। उन्होने ब्रिटिश शासको को इस बात का यकीन दिलाया कि मुसलमानो का प्रबल बहुमत काग्रेस विरोधी है और वे एक राष्ट्र के रूप मे हैं।

1890 मे सर सैयद अहमद ने मुसलमानो को विशेष सुविधाए देने के लिए अनेक प्रस्ताव प्रस्तुत किए थे। मुसलमानो म आतरिक विरोध के कारण सभी प्रस्ताव दब गए, लेकिन सन् 1906 मे मुसलमानो का एक डेपुटेशन वायसराय लाड मिंटो से मिला जिसकी व्यवस्था स्वय ब्रिटिश शासको ने की थी। मुसलमानो का डेपुटेशन, ब्रिटिश शासको से किस किस्म की फरियाद करेगा, यह भी स्वय ब्रिटिश प्रशासको ने तय कर दिया था।

इसी डेपुटेशन के आधार पर 30 दिसम्बर, 1906 को मुस्लिम लीग की स्थापना की गई, जिसका एकमात्र उद्देश्य भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के खिलाफ मुसलमानो का राजनीतिक दल तयार करना था।

वस्तुत लीग के नेताओ को हमेशा इस बात का भय बना रहा कि अगर ब्रिटिश राज खत्म हो गया तो हिन्दू हम पर राज्य करेंगे इसलिए उन्होने हमेशा ऐसे काय किए जिससे ब्रिटिश हुकूमत को बरकरार रखा जा सके।

वायसराय लाड मिंटो ने जो आश्वासन मुस्लिम डेपुटेशन को दिए थे, मार्ले मिंटो सुधार द्वारा उन्हें हकीकत मे बदला गया। हिन्दुओ को उपेक्षित कर मुसलमानो को विशेष हिदायतें दी गई। चुनावो मे मुसलमानो का पलडा भारी रखने के लिए अनेक कदम उठाए गए। यह आवश्यक कर दिया गया कि सिफ वही हिन्दू वोट दे सकते है जो तीन लाख की आमदनी पर आयकर देता है जबकि मुसलमानो के लिए यह सीमा तीन हजार रखी गई। इसी प्रकार हिन्दुओ

के लिए यह आवश्यक था कि वह तीस साल पुराने ग्रेजुएट हों जबकि मुसलमानों के लिए यह सीमा सिर्फ तीन साल थी।

1909 के मार्ले मिंटो रिफार्म से भारतीय मुसलमानों के लिए पृथक् चुनाव क्षेत्र और अलग अलग प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई। इसी अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्रों से भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ में ब्रिटिश शासकों ने सिर्फ मुसलमानों को अलग निर्वाचन क्षेत्र और अलग प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की, परन्तु बाद में सिक्खों, दलित जातियों और देश के अन्य अल्पसंख्यक दलों को भी अलग प्रतिनिधित्व दिया गया, जिससे हिन्दू मुस्लिम सम्बन्धों में और भी कड़वाहट पैदा हो गई।

राजनैतिक आधार

लीग की स्थापना और मार्ले मिंटो रिफार्म लागू करने के बाद स्वतन्त्रता संग्राम में साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया गया। साम्प्रदायिक विभेद को बढ़ाने के लिए हिन्दू महासभा को अस्तित्व में लाया गया। मुसलमानों की तमाम साम्प्रदायिक संस्थाएं अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम से अलग हटकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आगे घुटने टेकने लगीं। हिन्दू महासभा ने जब यह देखा कि मुसलमानों के लिए विभिन्न सरकारी पद सुरक्षित रखे गए हैं तो वह हिन्दुओं के लिए, नौकरियों में आरक्षण के लिए ब्रिटिश शासकों से भीख मांगने लगी। हिन्दुओं के पास पहले से ही काफी नौकरियां थीं, वे उसे बचाना चाहते थे तथा मुसलमान अपने लिए और नौकरियों की मांग कर रहे थे।

1907 में जब यह घोषणा की गई कि चुनाव, धर्म के आधार पर हुआ करेंगे तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इसका विरोध किया, लेकिन मुस्लिम लीग ने इसका कोई विरोध नहीं किया। चुनाव सम्बन्धी यह नीति हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का मूल आधार थी।

इस तरह ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने मुसलमानों को, चुनावों में अलग प्रतिनिधित्व देकर मुस्लिम लीग को कांग्रेस के विरोध में खड़ा किया। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के कारण कांग्रेस और मुस्लिम लीग एक-दूसरे से मिलने के लिए बाध्य हो गए। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान 1916 में जिन 19 सदस्यों ने कांग्रेस और लीग में एकता लाने की कोशिश की थी उनमें मोहम्मद अली जिन्ना भी एक थे। 1916 में कांग्रेस और लीग का अधिवेशन लखनऊ में हुआ। यह अधिवेशन लीग और कांग्रेस की एकता का प्रमाण था। दोनों पार्टियों ने मिलकर योजना तैयार की थी जो कांग्रेस लीग के नाम से विख्यात हुई। इस समय तक जिन्ना कांग्रेस के प्रमुख नेता थे। वे निरन्तर यह प्रयास करते आ रहे

थे कि मुसलमान कांग्रेस के निकट आए। उनके प्रयासों के परिणामस्वरूप ही लखनऊ समझौता संभव हो सका। लीग के लखनऊ अधिवेशन पद से भाषण करते हुए जिन्ना ने कहा था, "मैं जिन्दगी भर पक्का कांग्रेसी रहा हूं और सकीर्णतावादी नारों का भी मैं प्रेमी नहीं रहा हू लेकिन मुझे लगता है कि मुसलमानो पर अलगाववाद का जो इल्जाम लगाया जाता है वह बिल्कुल अनुचित और बेतुका है, जब मैं यह देखता हू कि महान् साम्प्रदायिक सगठन तेजी के साथ बढ़कर असगठित भारत मे अस्त्र का शक्तिशाली अस्त्र बन सकता है।"

मुस्लिम लीग और कांग्रेस के नेताओं द्वारा परस्पर एकता स्थापित किए जाने की बेइतहा चाह के बावजूद दोनो पार्टियो मे एकता ज्यादा समय तक न रह सकी और आपसी अंतर्विरोधो के कारण दोनो पार्टिया अलग-अलग रास्तो पर चल पड़ी।

भारत मे मुस्लिम अल्पसंख्यको के साथ पारसी, सिख, ईसाई भी रहते थे लेकिन इन्होने कभी भी अलग से साम्प्रदायिक किस्म की मागें सामने नहीं रखी। इस सम्प्रदाय के लोगो ने यह माग कभी नहीं उठाई कि अन्य किसी सम्प्रदाय से उन्हें खतरा है, सिर्फ पजाब और बगाल के हिन्दुओ व मुसलमानो को ही बहुमत समुदाय से खतरा दिखाई देने लगा था। अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्रो की माग से हिन्दुओ और मुसलमानो म सघर्ष और भी तेज हो गया। उस समय ब्रिटिश प्रधानमंत्री न यह घोषणा की थी कि ब्रिटिश सरकार विशेष स्थिति म सरक्षण रखते हुए उत्तरदायी सघ शासन के सिद्धात को स्वीकार करती है। गवनरी प्रातो मे, बाहरी हस्तक्षेप म रहित पूर्ण उत्तरदायी शासन रहेगा और विभिन्न प्रात अपने मनोनुकूल शासन चला सकेंगे।' इसका जिक्र राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'खण्डित भारत' म किया है। इस घोषणा के बाद ही 1932 मे साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति द्वारा अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दे दिया गया। इसमें न सिर्फ मुसलमानो के लिए बल्कि ईसाइयो, सिक्खो, पारसियों, एग्लो इण्डियनो, महिलाओ के लिए भी स्थान सुरक्षित रखे गए।

मार्ले मिण्टो रिफार्म मे जिस साम्प्रदायिक भावना को बढ़ाने का प्रयास किया गया था माटेग्यू चेम्सफोर्ड वह बेहद तीव्र हो गई।

1937 के चुनावों म कांग्रेस को भारी विजय प्राप्त हुई। कांग्रेस ने सभी गैर-मुस्लिम सीटो और कुछ मुस्लिम सीटो पर भी अपने उम्मीदवार खड़े किए। चुनाव मे, उन प्रांतो मे उनके उम्मीदवार विजयी हुए जहा पर मुसलमानो की सख्या अधिक थी, लेकिन दूसरी ओर लीग को बगाल, पजाब, सीमाप्रात व सिंध के इलाको मे अधिक सफलता नहीं मिल सकी। इस चुनाव मे लीग की हार के बाद भारतीय राजनीति मे प्रत्यक्ष रूप से अलग से मुस्लिम राष्ट्र की माग सामने आई। इकबाल 1930 मे ही पजाब, उ० प्र०, सी० प्रा० सिंध और बिलोचिस्तान

के मुसलमानों को अलग करने की मांग कर रहे थे। चुनावों म, मुस्लिम लीग की हार से, इन मागो ने काफी जोर पकड लिया जिसके फलस्वरूप 1940 मे लाहौर अधिवेशन मे पाकिस्तान की मांग सामने रखी गई।

1857 से ही जिस विघटन को आधार प्रदान किए जा रहे थे, उसे ठोस रूप देने के लिए पाकिस्तान की माग सामने रखी गई। यह मांग उस समय हुई जब 1937 के चुनावो मे काग्रेस को जबरदस्त विजय मिली। मुस्लिम लीग 1921 से ही चन्द मुट्ठी भर मुसलमानो के अधिकारो के लिए लड रही थी। पाकिस्तान की माग से पहले, भारत मे उत्तर पूर्वी और उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों को—जहा मुसलमानो का बहुमत था—अलग से प्रभुसत्ता सम्पन्न किए जाने की माग उठाई गई थी। बाद मे यही माग अलग से छ प्रातो मे मुस्लिम राज्य की माग बन गई। जिस समय यह माग प्रस्तुत की गई थी, उस समय मुस्लिम जनता भी उसके साथ थी। लेकिन मुस्लिम नेताओ ने जनता को नही बल्कि जमीदारो, ताल्लुकेदारो और सरमाएदारो को ध्यान मे रखते हुए एक अलग राज्य कायम करने की पहल की।

1939 मे द्वितीय विश्व युद्ध के समय भारत के राजनैतिक क्षितिज म व्यापक परिवर्तन आया। ब्रिटेन ने 3 सितम्बर, 1939 को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने के कुछ घटो बाद भारत के राष्ट्रीय नेताओ मे सलाह किए बिना, भारत को युद्ध मे शामिल घोषित कर दिया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद से विरोध करने के लिए काग्रेस ने उन सात मत्रिमण्डलो से इस्तीफा दे दिया जहा वह सत्ता मे थी। काग्रेस द्वारा मत्रिमण्डल से त्याग-पत्र दिए जाने पर मुस्लिम लीग ने खुशी का इजहार किया और 1940 मे द्विराष्ट्रीय सिद्धान्त के आधार पर पाकिस्तान की माग सामने रखी।

26 मार्च, 1940 को लीग ने लाहौर अधिवेशन म निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया जो आगे चलकर लाहौर प्रस्ताव के नाम से मशहूर हुआ। इस अधिवेशन मे द्विराष्ट्र के सिद्धान्त के आधार पर सार्वभौम राष्ट्र की माग की गई। प्रस्ताव मे कहा गया था 'फैसला किया जाता है कि अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के अधिवेशन की इस राय मे कोई वैधानिक योजना उस वक्त तक इस देश मे कार्यान्वित नही की जा सकती या मुसलमानो को मजूर नही हो सकती जब तक कि यह नीचे लिखे बुनियादी सिद्धातों के अनुसार नही बनाई जा सकती भौगोलिक दृष्टि से एक दूसरे से सटी हुई इकाइयो को अलग करके और उनम आवश्यक सीमा परिवर्तन करके ऐसे प्रदेश बना दिए जाए जिन क्षेत्रो मे सख्या की दृष्टि से मुसलमानो का बहुमत हो—जैसे कि भारत के उत्तर पश्चिमी और उत्तर पूर्वी क्षेत्र। उन मुस्लिम क्षेत्रो को मिलाकर ऐसे स्वतत्र राज्यो की स्थापना की जाए जिनमे शामिल इकाइयो को स्वायत्त शासन का अधिकार तथा पूर्ण स्वतत्रता

प्राप्त होगी।

लाहौर अधिवेशन का यह प्रस्ताव जिन्ना के द्विराष्ट्रीय सिद्धांत पर आधारित था। जिन्ना यह मानते थे कि भारत में मुसलमान एक राष्ट्र हैं जिनकी अलग संस्कृति है, अलग रहन सहन है व जिनके रीति रिवाज, धर्म, दर्शन, अलग अलग हैं। उनमें परस्पर रोटी-बेटी का सम्बन्ध नहीं है। जीवन पर दोनों भिन्न प्रकार से विचार करते हैं। दोनों के जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण में अंतर है। जबकि स्थिति बिल्कुल इसके विपरीत थी। जिन्ना द्वारा राष्ट्रीय सिद्धांत का प्रचार एक प्रतिगामी प्रचार था। वस्तुतः मुसलमान कभी भी एक राष्ट्रीय इकाई के रूप में उभरकर सामने नहीं आए। उनका अपना निश्चित कोई भू भाग नहीं था वे भारत के प्रत्येक प्रांत में रहते थे और जिस प्रांत में वे रहते थे वहीं की भाषा बोलते थे और वहां की संस्कृति में रच बस गए थे।

मोहम्मद अली जिन्ना ने छोटे छोटे और अलग अलग बिखरे हुए दलों को मुस्लिम लीग में शामिल करने की कोशिश की, जिससे कि लीग ही मुसलमानों की एकमात्र संस्था बनकर रह जाए। पाकिस्तान की वकालत करते हुए जिन्ना ने कहा, कि 'हम ब्रिटिशों को हटाना चाहते हैं, लेकिन अपने स्वामी की बदली करना नहीं चाहते। भारत के तीन चौथाई भाग में हिन्दू हैं, जहां वे राज्य कर सकते हैं लेकिन मुसलमान सिर्फ एक चौथाई भाग में हैं। अतः दोनों को स्वतंत्र होना है, इसमें हानि क्या है?' उन्होंने आगे कहा, मि० गांधी, नेहरू, पटेल और अन्य नेता पूरे भारत पर राज्य करने का अपना स्वप्न छोड़ दें, जोकि अब समाप्त हो चुका है।

मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान को मजबूत बनाने का एक आधार और भी था। वह यह कि कांग्रेस ने पूर्व समझौते के अनुसार मुस्लिम प्रतिनिधियों को संयुक्त सरकार में लेने से इंकार कर दिया। चुनाव के पूर्व यह समझौता हुआ था कि अगर संयुक्त सरकार बनाई जाएगी तो मुस्लिम लीग के दो नेताओं को मंत्रिमण्डल में लिया जाएगा। चुनाव के बाद कांग्रेस ने इस समझौते को व्यवहार में लाने से इंकार कर दिया। मौलाना आजाद ने, जो कि उस समय कांग्रेस के नेता थे, लीग के नेताओं के साथ विचार विमर्श करके यह तय किया था कि मुस्लिम लीग, कांग्रेस के साथ मिलकर कार्य करेगी तथा चौधरी खलीकुज्जमा और नवाब इस्माइल खां दोनों को संयुक्त प्रदेश की सरकार में लिया जाएगा, लेकिन नेहरू इस प्रस्ताव को न मान सके, जिसके फलस्वरूप मुस्लिम लीग और कांग्रेस में कोई समझौता न हो सका। आजाद मानते थे कि कुछ ऐसी ऐतिहासिक परिस्थितियां हैं, जिनके अंतर्गत इन दोनों को मंत्रिमण्डल में लेना अनिवार्य होगा, लेकिन नेहरू सिर्फ एक को मंत्रिमण्डल में लेने के पक्ष में थे। इस आशय का एक पत्र नेहरू ने उनको लिखा था। आजाद ने इस घटना को सबसे

दुर्भाग्यपूर्ण बताते हुए कहा, "अगर संयुक्त प्रदेश में लीग से सहयोग का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया होता तो मुस्लिम लीग पार्टी व्यवहारतः कांग्रेस में मिल गई होती।"

भारत विभाजन की योजनाएं 1939 में प्रस्तुत की जाने लगी थी। 1939 में ही लीग के नेताओं की तरफ से दो योजनाएं उभरकर सामने आईं। एक योजना रहमत अली की और दूसरी अब्दुल लतीफ की। रहमत अली की योजना के अनुसार सिर्फ पंजाब, सिंध पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रांत, बिलोचिस्तान और काश्मीर को भारत से अलग कर देना चाहिए, लेकिन अब्दुल लतीफ की योजना इससे दो कदम आगे थी। उनकी योजना के अनुसार उपर्युक्त प्रान्तों के साथ-साथ बंगाल और आसाम को भी भारत से अलग कर देना चाहिए। लेकिन 1940 में लीग ने मुस्लिम बहुल प्रदेशों को हिंदुस्तान से अलग करने तथा उनको मिलाकर एक राज्य कायम करने की मांग की और लाहौर अधिवेशन में पाकिस्तान प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव को स्पष्ट करते हुए 1945 में जिन्ना ने कहा, 'भारत का गतिरोध, उतना ज्यादा भारत और अंग्रेजों के बीच में नहीं है। वह असल में हिंदू कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच में है। जब तक पाकिस्तान नहीं दिया जाता तब तक कोई समस्या हल नहीं हो सकती। एक नहीं, दो विधान सभाएं बनानी होंगी। उनमें से एक हिन्दुस्तान का विधान बनाएगी, दूसरी पाकिस्तान का।'

जिस समय जिन्ना पाकिस्तान की मांग कर रहे थे, उस समय उनके पास पाकिस्तान की सीमारेखा के बारे में कोई स्पष्ट धारणा नहीं थी। वे पहले इस मांग को स्वीकार करवा कर, पाकिस्तान की सीमा रेखा के बारे में बाद में विचार करना चाहते थे।

पाकिस्तान की मांग को मजबूती से सामने रखने की एक वजह और भी थी, वह यह कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस यह देख रही थी कि भारत में क्रांतिकारी शक्तियां बहुत तेजी से संगठित होती जा रही हैं और जनआंदोलन पर उनकी पकड़ बढ़ती जा रही है। कांग्रेस के प्रमुख नेताओं को यह भय हो चला था कि कहीं ऐसा न हो कि आंदोलन की बागडोर हमारे हाथों से निकलकर वामपंथी ताकतों के हाथों में चली जाये, लिहाजा कांग्रेस ने ब्रिटेन से सौदेबाजी करनी चाही और जनआंदोलन को एक ऐसा मोड़ दिया जिससे ब्रिटिश शासक कांग्रेस को ही सत्ता सौंप सकें। दूसरी ओर मुस्लिम लीग, कांग्रेस के इस भय को पहचान चुकी थी। उसे भी अपने वर्ग के लिए खतरा महसूस होने लगा था। अपने को खतरे से बचाने के लिए तथा वामपंथियों और कांग्रेसी नेताओं के हाथों में सत्ता जाने से रोकने के लिए उन्होंने पाकिस्तान की मांग को लेकर साम्प्रदायिक उपद्रवों की धमकी देकर, अपनी मांग पर और जोर दिया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात भारत मे राजनैतिक और आर्थिक असन्तोष बहुत तजी से बढने लगे थे और इस बात की पूरी सभावना थी कि य असन्तोष हिंसक क्रान्ति का रूप धारण कर लेंगे। ब्रिटिश सरकार इस आसन्न स्थिति से अच्छी तरह परिचित थी। इस स्थिति पर काबू पाने तथा भारतीय राष्ट्रीय नेताओ से बातचीत चलाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने कैबिनेट मिशन भारत मे भेजा था।

राजनैतिक और आर्थिक असन्तोष न सिर्फ जनता मे, वरन पुलिस और सेना मे भी फैल रहे थे जिसके परिणामस्वरूप फरवरी, 1946 मे वायुसेना तथा नौ-सेना के अनेक केन्द्रो मे व्यापक हडतालें हुई थी। एक तरफ क्रान्तिकारी शक्तिया अपनी पूर्ण शक्ति के साथ सगठित होती जा रही थी तो दूसरी तरफ काग्रेस के नेता इन क्रान्तिकारी शक्तियो का विरोध कर रहे थे। लगभग इसी समय गाधी जी ने भारत के क्रान्तिकारी सघर्ष की तीव्र भर्त्सना की थी।

भारत की क्रान्तिकारी शक्तियो से ब्रिटिश प्रधानमत्री श्री एटली भी परिचित थे। उन्होंने भी अपने भाषण मे स्पष्ट किया था कि 1946 की स्थितिया 1920, 1930 और 1942 की नही हैं परन्तु उनका लक्ष्य वही था।

मिशन ने 23 मार्च, 1946 को काग्रेस और लीग के अध्यक्षो का त्रिपक्षीय सम्मेलन आयोजित किया। यह सम्मेलन भारत के सविधान को लेकर प्रारम्भ हुआ। सम्मेलन के बाद मिशन ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसके अनुसार, 'ब्रिटिश भारत का भावी सवैधानिक स्वरूप इस प्रकार होगा। सघीय सरकार के हाथो मे निम्नलिखित बातें होगी—विदेशी मामले, प्रतिरक्षा और सचार प्रान्तो के दो समूह होगे—एक समूह मे मुस्लिम बहुमत वाले प्रान्त हागे और दूसरे मे हिन्दू बहुमत वाले। ये अन्य उन सभी विषयो पर कार्यवाही करेंगे जिन्हें अपने-अपने समूह के प्रान्त समवेत रूप से कराना चाहेंगे। प्रान्तीय सरकारे अन्य सभी विषयो पर कार्यवाही करेंगी और उनमे सभी शेष प्रभुसत्ता सम्पन्न होगी।

5 मई से 12 मई तक शिमला मे सम्मेलन हुआ जिसमे काग्रेस के चार प्रतिनिधि मौलाना आजाद, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और खान अब्दुल गफ्फार खा ने भाग लिया। मिशन ने सम्मेलन के दौरान मुस्लिम लीग को बराबर का प्रतिनिधित्व देने की माग की, परन्तु कोई समझौता सम्भव न हो सका। 16 मई, 1945 का मिशन ने अपनी योजना प्रकाशित कर दी, जिसके अनुसार देश को तीन भागो—क, ख और ग मे विभाजित कर दिया गया। 'क' भाग मे हिन्दू बहुमत वाले क्षेत्र हागे, 'ख' भाग म पजाब, उत्तर पश्चिम सीमा त प्रदेश और बिलोचिस्तान होंगे। यह मुस्लिम प्रधान क्षेत्र होगा। भाग 'ग' मे जिसमे बगाल और आसाम थे, मुसलमान शेष लोगो से कुछ ज्यादा होग।

दूसरी तरफ 16 मई, 1946 को वायसराय लार्ड वेवेल ने विभिन्न धर्मों के

आधार पर अंतरिम सरकार बनाने का प्रस्ताव पेश किया जिसमें कहा गया कि 40 प्रतिशत सीटें हिन्दुओं को दी जाएंगी, जिन्हें कांग्रेस मनोनीत करेगी और 40 प्रतिशत सीटें मुसलमानों को दी जायेंगी जिन्हें मुस्लिम लीग नामजद करेगी। बाकी 20 प्रतिशत सीटें सिखों, भारतीय ईसाइयों, अनुसूचित जातियों और पारसियों में बांटी जायेंगी।

26 जून, 1946 को मिशन वापस गया था और 29 जुलाई, 1946 को जिन्ना ने 'डायरेक्ट ऐक्शन डे' की घोषणा की। मुस्लिम लीग ने अपने अधिवेशन में कहा, 'आज हमने इतिहास का सबसे ऐतिहासिक निर्णय लिया है। लीग के इतिहास में हमने कभी वैधानिक उपायों को छोड़कर दूसरे उपाय नहीं बरते लेकिन आज हम बाध्य हैं। हम वैधानिक उपायों को विदा देते हैं। लीग के मुख-पत्र डान ने लिखा था, 'डायरेक्ट ऐक्शन का दिन आ गया है और मुसलमानों को अपने अधिकार बलपूर्वक प्राप्त करने होंगे।' 16 अगस्त, 1946 को 'डायरेक्ट ऐक्शन डे' मनाने का निर्णय लिया गया। इस तारीख से दो सप्ताह पहले जिन्ना ने घोषणा की थी, 'हम हिन्दुस्तान के टुकड़े-टुकड़े कर देंगे या इसे तबाह कर देंगे।' इस दिन भयानक रक्तपात हुआ। दंगे, आगजनी, लूटपाट, हत्याओं का ताण्डव नृत्य देखा गया। मोटे तौर पर इस दिन 7000 व्यक्ति मारे गये और बहुत से लोग घायल हुए।

यह सब कैबिनेट मिशन के फलस्वरूप हुआ। मौलाना आजाद ने 'डायरेक्ट ऐक्शन डे' को इतिहास का काला दिन बताते हुए लिखा, "16 अगस्त 1946 का दिन न सिर्फ कलकत्ते के लिए बल्कि पूरे भारत के लिए काला दिन था। परिस्थितियों ने इस तरह मोड़ ले लिया था कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग में कोई समझौता असम्भव दिखाई दे रहा था।'

1946-47 तक आते-आते भारत का राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गया था और भारत की क्रांतिकारी शक्तियां तेजी के साथ संगठित होती जा रही थीं। 17 अप्रैल 1946 को ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री श्री एटली ने किंग जार्ज 6 से यह इच्छा प्रकट की थी कि वे माउण्टबेटन को भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजना चाहते हैं। 20 फरवरी 1947 को प्रधानमन्त्री एटली ने संसद में बयान जारी किया कि भारत की वर्तमान हालत खतरे से भरी हुई है और इसे ज्यादा दिन तक चलने नहीं दिया जा सकता। उन्होंने घोषणा की, 'बादशाह सलामत की सरकार यह साफ कर देना चाहती है कि 1948 के पहले पहले जिम्मेदार भारतीय हाथों में सत्ता सौंप देने के लिए जरूरी कदम उठाना उनका पक्का इरादा है।

20 फरवरी 1947 को एटली ने उपर्युक्त बयान जारी किया था और 24 मार्च, 1947 को माउण्टबेटन को भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा गया। लार्ड

माउण्टबेटन ने भारत आते ही कांग्रेस और लीग के नेताओं से मिलना प्रारम्भ किया। उनके आने से पहले केबिनेट मिशन भारत आया था लेकिन वह असफल ही होकर लौटा। माउण्टबेटन ने बड़ी चतुराई से विभिन्न राष्ट्रीय नेताओं को विभाजन के पक्ष में करके 3 जून, 1947 को अपनी योजना प्रस्तुत की। इस योजना के अनुसार, 'हिन्दुस्तान को दो हिस्सों, भारतीय संघ और पाकिस्तान में बांट दिया जायगा।' इन दोनों राज्यों की अंतिम सीमा निर्धारित करने से पहले पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश और असम के सिलहट जिले में जनमत संग्रह और सिंध विधान सभा में मतदान यह जानने के लिए किया जायेगा कि उक्त दोनों राज्यों में से वे किसमें शामिल होना चाहते हैं। हिन्दुस्तान के विभाजन से पहले पंजाब और बंगाल के सीमांकन के सवाल का फैसला करना होगा। इस सवाल का हल करने के लिए निम्नलिखित रास्ता अपनाना होगा। प्रत्येक प्रान्त की विधान सभा को दो ग्रुपों में बांट दिया जाएगा—(क) मुस्लिम बहुसंख्यक जिलों का ग्रुप, (ख) हिन्दू बहुसंख्यक जिलों का ग्रुप। हर ग्रुप अपने प्रांत के विभाजन के पक्ष या विपक्ष में वोट देगा कि वे पूरे के पूरे पाकिस्तान में चले जाएँगे या दोनों राज्यों में बांट दिए जाएगें। अगर एक ग्रुप विभाजन चाहेगा तो दूसरे ग्रुप के न चाहने पर भी प्रान्तों का बटवारा कर दिया जाएगा। इन कार्यों को पूरा करने के बाद हिन्दुस्तान की संविधान सभा को दो हिस्सों में बांट दिया जाएगा। देशी रियासतों को यह तय करने का अधिकार होगा कि वे किस डामीनियन में शामिल होना चाहती हैं। अगर कोई रियासत किसी भी डोमीनियन में शामिल नहीं होना चाहती तो ब्रिटेन के साथ उसके पहले जैसे सम्बन्ध बने रहेंगे लेकिन वह डोमीनियन नहीं बन सकेगी। माउण्टबेटन की यह योजना देश को विभाजित करने की योजना थी और राजे रजवाड़ों के साथ पहले जैसे सम्बन्ध बनाए रखना चाहती थी। मुस्लिम लीग ने इस योजना का जोरदार स्वागत किया और कांग्रेस के नेताओं ने भी बहुत हिचकिचाहट के बाद इसे स्वीकार कर लिया।

कांग्रेस द्वारा योजना को स्वीकार किये जाने का विरोध, देश की सामान्य जनता ने भी किया। हिन्दुओं का बहुतायत ऐसा था जो यह मानता था कि वे मुसलमानों को बाहर निकालकर देश को आगे ले जा सकने में समर्थ होंगे लेकिन डी० डी० तेन्दुलकर के अनुसार, 'ऐसे लोग भी थे जो यह देख रहे थे कि विभाजन, भारतीय समस्याओं का कोई हल नहीं है। माउण्टबेटन योजना के अनुसार लगभग चार करोड़ मुसलमान भारतीय संघ की, और 2 करोड़ हिन्दू तथाकथित पाकिस्तान की सीमाओं में रह जाएगे। ये कांग्रेस के निर्णय से विरोध प्रकट कर रहे थे।' जिन्ना ने माउण्टबेटन की योजना को स्वीकार किया। काजी द्वारिकादास के शब्दों में हम कह सकते हैं, "जिन्ना ने पाकिस्तान जीता नहीं, बल्कि कांग्रेस

नेता गांधी, नेहरू और पटेल जिन्ना से पाकिस्तान हार गए।"

4 जुलाई, 1947 को ब्रिटिश संसद में माउण्टबेटन योजना के अनुसार भारत विभाजन का विधेयक पेश किया गया और 18 जुलाई, 1947 को ब्रिटिश सम्राट ने उस पर हस्ताक्षर कर दिए और घोषणा कर दी गई कि 15 अगस्त, 1947 को भारत को दो टुकड़ों में बांट दिया जाएगा। 14 अगस्त को पाकिस्तान और 15 अगस्त को भारतीय अधिराज्य की स्थापना होगी।

देश का विभाजन, माउण्टबेटन प्लान के मुताबिक किया गया। इसके अनुसार दो सीमा आयोग बनाने का प्रस्ताव किया गया जिनमें एक का सम्बन्ध, बंगाल विभाजन व आसाम से सिलहट जिले को अलग करने का था और दूसरे का सम्बन्ध पंजाब विभाजन से था। प्रत्येक सीमा आयोग में एक सभापति और चार सदस्य थे जिनमें से दो मुस्लिम लीग के थे और दो कांग्रेस के। इन दोनों सीमा आयोगों के सभापति सर रेडक्लीफ थे। दोनों आयोगों ने हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सीमा का विभाजन हिन्दू अल्प संख्यक और मुस्लिम बहु संख्यक तथा हिन्दू बहु संख्यक और मुस्लिम अल्प संख्यक आदि को केन्द्र में रखकर किया।

कांग्रेस यह मानती थी कि बंगाल में 46 प्रतिशत जनता हिन्दू थी जबकि रेडक्लीफ के अनुसार सिर्फ 35 प्रतिशत जनता हिन्दू थी। पंजाब में हिन्दू बहु संख्यक क्षेत्र की मांग कांग्रेस ने सिक्खों के धार्मिक अधिकारों की सुरक्षा, उनके आर्थिक हित पंजाब की नहरें बांध आदि के आधार पर उठाई थी। सिख मोंटगुमरी लायलपुर, मुल्तान के कुछ भागों को भी पूर्वी पंजाब में मिलाने की मांग कर रहे थे, जबकि दूसरी ओर मुस्लिम लीग रावलपिंडी, मुल्तान और लाहौर जिलों के अतिरिक्त जालंधर और अम्बाला के कुछ भागों को भी पश्चिमी पंजाब में शामिल करना चाहती थी। पंजाब के इन क्षेत्रों की मांग करने का, दोनों पार्टियों के पास आर्थिक आधार था। पूर्वी पंजाब की तीन नदियां—व्यास, सतलुज और रावी थी, जो प्रान्त के आर्थिक आधार को मजबूत करने का बहुत बड़ा साधन थी। लाहौर व शेखपुरा को पूर्वी पंजाब में शामिल न करने से, सिखों को आर्थिक दृष्टि से काफी नुकसान हुआ, क्योंकि इन क्षेत्रों में कृषि उत्पादन में वृद्धि के साधन बहुतायत थे।

दूसरी ओर उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त, सिंध व बिलोचिस्तान में हिन्दू और मुसलमान इस तरह रहते थे कि उनके बीच कोई विभाजक रेखा खींचना कठिन था। इसी तरह पंजाब के बहुसंख्यक जिलों को भी हिन्दू और मुस्लिम आदि जिलों में नहीं बांटा जा सकता। जिन जिन क्षेत्रों में इस तरह की स्थिति थी वहां की जनता से निर्णय लेने का अधिकार दिया गया कि वह चाहे तो पाकिस्तान में रह सकती है और चाहे तो हिन्दुस्तान में।

विभाजन के समय सेना का बटवारा भी साम्प्रदायिक आधार पर किया गया। काग्रेस और मुस्लिम लीग दोनो इस बात पर जोर दे रही थी कि 15 अगस्त से पहले दोनो देशो की अपनी अलग-अलग सेनाए हो। विभाजन काउसिल ने यह तय किया था 'सेना की मुस्लिम यूनिटें' पाकिस्तान मे रहेंगी जबकि हिन्दू यूनिटें हिन्दुस्तान मे रहेंगी और जो हिन्दू सैनिक पाकिस्तान के क्षेत्रो मे तैनात हैं, वे हिन्दुस्तान की ओर तथा जो मुस्लिम सैनिक हिन्दुस्तान के क्षेत्रो मे तैनात हैं, वे पाकिस्तान की ओर रवाना होगे। भारत के अन्य क्षेत्रो मे तनात सैनिको को आत्मनिणय का अधिकार दिया जाएगा कि वे चाहें तो पाकिस्तान मे रह सकते हैं या चाहें तो हिन्दुस्तान मे।

सेना के इस तरह विभाजन से दोनो सेनाए कमजोर हो गई क्योकि एकदम नये सिरे से उनकी बटालियनो, रेजीमेटस प्रशिक्षण सस्थानों आदि का गठन किया गया। जिस समय सेना मे विभाजन किया, उस समय सेना म 47 8 प्रतिशत हिन्दू, 23 7 प्रतिशत मुस्लिम, 16 3 प्रतिशत सिख और 12 2 प्रतिशत अन्य लोग थे। ये सब भारत के विभिन्न क्षत्रो म फले हुए थे। साम्प्रदायिक आधार पर सेना का बटवारा करने से सेना के हिन्दू व मुस्लिम सनिको मे भी साम्प्रदायिकता प्रवेश कर गई थी।

विभाजन के पक्ष और विपक्ष मे अनेक तक दिए गए। इसके पक्ष मे कहा गया कि विभाजन से हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच बढता हुआ वैमनस्य खत्म हो जाएगा तथा मुसलमानो के दिल से हिन्दू राज्य का भय निकल जाएगा। यह भी कहा गया कि विभाजन से भारत के अल्पसख्यको की समस्याए हमेशा के लिए हल हो जाएगी तथा भारत की रक्षा का प्रश्न भी हल हो जाएगा। लेकिन ये सभी तक अव्यावहारिक साबित हुए। विभाजन के बाद की हुई घटनाओ से पता चलता है कि न तो हिन्दू मुसलमानो मे वमनस्य खत्म हुआ और न ही रक्षा के प्रश्न हल हो सके। इसके विपरीत दोनो देश एक दूसरे से सशकित रहने लगे और दोनो ही दशो न अपनी सैन्य शक्ति मे वद्धि करनी प्रारम्भ की। आज भी भारतीय सघ ने अपने वार्षिक राजस्व का 54 प्रतिशत सुरक्षा पर खच कर रहा है और इतना ही पाकिस्तान अपने सैन्य तत्र पर खच कर रहा है।

विभाजन के प्रस्ताव का विरोध न सिफ हिन्दुओ ने बल्कि मुसलमानो ने भी किया था। इनमे जमायतुल उलमा, जमायतुल मोमीन, अहरार राष्ट्रीय मुस्लिम दल, अखिल भारतीय शिया कान्फ्रेंस आदि प्रमुख थे। जमायत उल-उलेमा, ब्रिटिश साम्राज्यवाद को इस्लाम का सबसे बडा दुश्मन मानती थी। इस सस्था ने मुस्लिम लीग को चेतावनी दी थी कि यदि विभाजन की योजना को स्वीकार कर लिया गया तो यह मुसलमानो को तीन ग्रुपो मे बाट देगी जो विशेष रूप से उन मुसलमानों के लिए घातक होगी जो हिन्दुस्तान की सीमा मे

रह जाएंगे। इस संस्था के अनुसार यदि विभाजन की माग को स्वीकार कर लिया गया तो इससे इस्लाम को फैलने में रुकावट पैदा होगी। जिन्ना का विरोध करते हुए इस संस्था ने कहा, "मि० जिन्ना उन सात करोड़ मुसलमानों का मातम-उत्सव मनाने के लिए तैयार थे जो बहुतायत में हैं।"

चूंकि दोनों देशों को एक-दूसरे के विरोध में खड़ा किया गया था, इसलिए दोनों देशों में निरन्तर कलह रहने लगी। देशी रियासतों में उलझनें पैदा हो गई। विभाजन का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि दोनों राष्ट्रों का आर्थिक आधार नष्ट हो गया। पाकिस्तान के क्षेत्र मुख्य रूप में कृषि के लिए फायदेमन्द थे और हिन्दुस्तान की सीमाओं में व्यावहारिक रूप से सभी उद्योग थे, इसलिए दोनों देशों की अर्थव्यवस्था का संतुलित विकास न हो सका।

इस प्रकार 1857 में ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने हिन्दू और मुसलमानों के धर्म के आधार पर अलग करने की जो नीतियां निर्धारित की थी और बाद के वर्षों में जिस सुनियोजित तरीके से इन नीतियों का विस्तार किया गया था अन्तत उसका परिणाम देश का विभाजन हुआ।

सामाजिक आधार

1857 के विद्रोह के पश्चात् ब्रिटिश शासन ने एक ओर जनता पर दमन काफी तेज कर दिया और दूसरी ओर देश में क्रांतिकारी शक्तियां सामने आने लगी। 1860 और 1870 के बीच प्रकाशित पुलिस की गुप्त रिपोर्टों से यह पता चलता है कि जनता में सरकार के प्रति असंतोष बहुत बढ़ रहा था और जगह-जगह षड्यन्त्रकारी संगठन बनने लगे थे। मिस्टर ओ० ह्यूम ने पुलिस की रिपोर्टों के आधार पर कहा था, "मुझे न तब जरा भी संदेह था और न आज है कि हम उस समय सचमुच एक बहुत ही भयानक क्रांति के खतरे का सामना कर रहे थे और यह खतरा हद से ज्यादा बढ़ चुका है।' उन्होंने लिखा, 'ये गरीब लोग अपनी मौजूदा हालत से एकदम निराश हो गए हैं और उन्हें विश्वास हो गया है कि वह भूखों मर जाएंगे, इसलिए वे अब कुछ करना चाहते हैं। और, इस कुछ का मतलब है—हिंसा। बेशुमार रिपोर्टों में पुरानी तलवारें, भाले और बन्दूकें छिपाकर रखने की बात है। यह ख्याल नहीं था कि इन सबके परिणामस्वरूप शुरू में हमारी सरकार के खिलाफ बगावत खड़ी हो जाएगी।"

प्रथम महायुद्ध के पश्चात देश में बहुत बड़ा क्रांतिकारी उभार आया। 1917 की क्रांति के पश्चात भारत में साम्यवादी विचारधारा के प्रचार में काफी तेजी आई जिसके फलस्वरूप व्यापक रूप से जन-आन्दोलन प्रारम्भ हुए। इन जन-आंदोलनों से मजदूरों और किसानों में चेतना पैदा हुई। 1919 में हड़तालों का सिलसिला प्रारम्भ हुआ और 1920 तक पूरे देश में फैल गया।

1925 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई, जिसमे 'ट्रेड यूनियन आंदोलन' को मार्क्सवादी लेनिनवादी कार्यप्रणाली पर चलने के लिए प्रेरित किया गया। भारत के कांग्रेसी नेता कम्युनिस्टों के बढ़ते हुए 'प्रभाव' को देखकर काफी चिंतित थे। 1929 में सरकार ने बढ़ते हुए मजदूर आंदोलन को रोकने की पूरी कोशिश की। 1929 में लेजिस्लेटिव एसेम्बली में भाषण करते हुए लार्ड एरविन ने कहा था, "कम्युनिस्ट विचारधारा के प्रचार से मुझे बड़ी चिंता हो रही है और उन्होंने ऐलान किया था कि सरकार इसे रोकने का उपाय करेगी। दूसरे महायुद्ध के पश्चात किसानों के असंतोष भी तीव्र रूप में सामने आए क्योंकि युद्ध के बाद विश्वव्यापी आर्थिक संकट से कृषि की अर्थव्यवस्था पर जबरदस्त आघात हुआ था। युद्ध के बाद मजदूर वर्ग भी देश की समस्त जनतांत्रिक क्रांतिकारी शक्तियों का नेतृत्व करने लगा था। इसी समय कांग्रेस ने भी पूर्ण स्वाधीनता की मांग शुरू कर दी थी। बढ़ते हुए जन-आंदोलनों को दबाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 'भारत रक्षा आर्डिनेंस कानून' पास किया था जिसके जरिए हजारों कम्युनिस्टों और वामपंथी कार्यकर्ताओं को जेल में बंद कर दिया गया।

1947 आते आते भारत में क्रांतिकारी शक्तियां काफी मजबूत हो गई थीं। बंगाल में छुटपुट विद्रोहों की अनेक घटनाएं सामने आने लगी थीं। सरकार कम्युनिस्ट पार्टी की बढ़ती हुई तादाद से चिंतित थी। 1947 में लोकसभा में सरकार को यह बताया गया कि 1946 में कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों की संख्या 53,700 थी और उसी वर्ष, 1950 कम्युनिस्ट कार्यकर्ता गिरफ्तार किए गए। यह सरकारी आंकड़े थे, जबकि वास्तविक संख्या कुछ अधिक थी। 1947 में बंगाल की क्रांतिकारी शक्तियां काफी तेजी के साथ संगठित होती जा रही थीं। 1947 में गृह विभाग के सचिव आई० सी० एस० अफसर श्री पोटर थे। कम्युनिस्टों के बढ़ते हुए प्रभाव से इन्होंने तमाम प्रांतीय सरकारों (सेंट्रल प्राविन्स, बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब) को आगाह किया था। इन प्रांतों की सरकारों को इन्होंने एक सर्कुलर भेजा था, जिसमें कहा गया था कि मद्रास सरकार ने कम्युनिस्टों को गिरफ्तार करने की व्यवस्था कर ली है और बम्बई सरकार भी बिना मुकदमा चलाए कम्युनिस्टों को गिरफ्तार कर सकेगी। ऐसे कदम इसलिए उठाने पड़ रहे हैं, क्योंकि कम्युनिस्ट आतंकवादी तरीकों से भोली जनता को पार्टी प्रोग्राम सिखा रहे हैं और किसानों में असंतोष की भावना पैदा कर रहे हैं। इतना ही नहीं, वे अनेक पार्टी सेल बना रहे हैं और सरकारी कार्यालयों से गुप्त जानकारी प्राप्त कर रहे हैं। पोटर के अनुसार स्थिति इतनी गंभीर थी कि यदि तुरंत कार्यवाही न की गई तो इस पर नियंत्रण करना असंभव हो जाएगा। सर्कुलर में आगे कहा गया था कि कम्युनिस्ट, सिर्फ किसानों और मजदूरों के

संघर्ष का नेतृत्व ही नहीं करना चाहते वरन् साम्राज्यवाद के विरुद्ध व्यापक जन संघर्ष का नेतृत्व कर रहे हैं पिछले एक वष म काग्रेस न अपने चुनाव कायक्रम मे किए गए किसी भी वायदे को पूरा नहा किया। इतना ही नहीं, उनका अभी प्रारभिक काय भी शुरू नही हुआ। इसलिए कम्युनिस्टो को बिना मुकदमा चलाए गिरफ्तार कर लिया जाए ताकि गरीब किसानो के पक्ष म बोलने वाला कोई न हो।"

काग्रेस और मुस्लिम लीग भी इस तथ्य से अच्छी तरह परिचित थी और देख रही थी कि यदि क्रान्तिकारी शक्तियां इसी रफ्तार से बढ़ती रहीं तो वे न सिफ ब्रिटिश साम्राज्यवाद का खात्म करेंगी बल्कि उनको भी खत्म कर देंगी। इसलिए दोनो पार्टियो ने क्रातिकारी शक्तियो के हाथो म सत्ता को जाने से रोकने के लिए देश का विभाजन स्वीकार किया था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद भी महसूस कर रहा था कि यदि देश का विभाजन न किया गया तो सभव है देश की वामपंथी ताकतें सत्ता मे आ जाए और यदि ऐसा होता है तो उसके हाथो से दोनो राष्ट्रो की आर्थिक पकड निकल जाएगी। इस पकड को बरकरार रखने के लिए और नाममात्र की झूठी आजादी देने के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने देश का विभाजन किया। ऐसा इसलिए हुआ क्योकि काग्रेस और मुस्लिम लीग न तो वामपथी शक्तियो के साथ समझौता कर सकी और न ही सयुक्त रूप म राष्ट्रीय स्वाधीनता की माग अग्रेजो के सामने रख सकी।

आर्थिक आधार

इस विभाजन का धार्मिक, राजनैतिक आयाम के साथ-साथ आर्थिक आयाम भी अत्यन्त महत्त्वपूण था। पाकिस्तान की माग, कुछ आर्थिक मूल्यो को लेकर भी सामने आई थी। अल्पसख्यक के रूप म मुसलमान अन्य समुदायो से पिछडे हुए थे। मोहम्मद अली जिन्ना ने मुसलमानो को यह विश्वास दिलाया था कि यदि पाकिस्तान नही दिया जाता तो भारत के तमाम मुसलमानो को काग्रेस के अधीन रहना पडेगा और काग्रेस का अथ है—हिंदू राज्य की स्थापना, जहा मुसलमानो को फलने फूलने का मौका नही मिलेगा। इसलिए उन्होने अलग से मुस्लिम राष्ट्र की माग सामने रखी। 1941 मे जिन्ना ने लीग का उद्देश्य बताते हुए कहा था, 'लीग का उद्देश्य, भारत के पूर्वी पश्चिमी, और उत्तरी क्षेत्रो का वित्त, रक्षा विदेश, व्यापार, सचार, कस्टम, मुद्रा और विनिमय के पूण नियत्रण के साथ एक स्वतत्र राज्य की स्थापना करना है।' 1941 म रियाजुल करीम ने पाकिस्तान की माग के आर्थिक पक्ष पर जोर देते हुए मुसलमानो से पूछा था, "क्या तुम किसी भी मूल्य पर मुसलमानो की भलाई के लिए पाकिस्तान चाहते हो? यदि किसी भी मूल्य पर चाहते हो तो कोई बात नही। पर यदि वास्तव मे तुम

मुसलमानो की भलाई के लिए पाकिस्तान चाहते हो तो उसके आर्थिक पक्ष पर विचार करना भी बहुत जरूरी है।''

लेकिन अंग्रेजो ने हिन्दुस्तान का बटवारा इस तरह किया था जिससे दोनो देशो की आर्थिक व्यवस्था पर दबाव पडे और कोई भी देश स्वतंत्र रूप से आर्थिक विकास के मार्ग पर आगे न बढ सके। जिन छ प्रातो—सिंध, बिलोचिस्तान, उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश, पंजाब, बंगाल और आसाम—के आधार पर पाकिस्तान का निर्माण किया गया था, इनकी उत्पादन क्षमता, इसके उद्योग-धंधे, उनमे पाये जाने वाले खनिज पदार्थ, वहा के वन-उपवन इतने विकसित नही थे जितने कि भारत के क्षेत्रो म थे। अलबत्ता ये छ प्रान्त कृषि के क्षेत्र मे काफी आगे थे।

बंगाल मे खेती योग्य भूमि बहुत अधिक थी परन्तु आबादी मे निरंतर वृद्धि के कारण बंगाल की उपज स्वय बंगालियो के लिए कम पडती थी। मुस्लिम क्षेत्रों मे खेती करने योग्य भूमि 2,39,48,462 एकड थी जबकि गैर-मुस्लिम क्षेत्रो मे 1,11, 58,587 एकड थी। पूरे बंगाल को पाकिस्तान म शामिल करने के लिए जिन्ना के पास यह महत्त्वपूर्ण आधार था। इसके साथ ही जिन्ना पूरे कलकत्ता को भी पाकिस्तान मे शामिल करना चाहते थे क्योकि बंगाल म जितने भी उद्योग धन्धे थे वह सब कलकत्ता के इर्द-गिर्द थे।

किसी भी देश की आर्थिक व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए कोयला, लोहा, इस्पात, वन-उपवन आदि महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सीमाए निर्धारित की गई, उनके तहत उद्योगों के लिए कच्चा माल इस तरह परस्पर बट गए कि कोई भी देश दूसरे की उपेक्षा करके अपना पूर्ण विकास नही कर सकता था। देश के विभाजन से दोनो देशों का औद्योगिक विकास प्रभावित हुआ। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने देश का विभाजन इस तरह किया कि दोनो देशो की आर्थिक व्यवस्थाए छिन्न भिन्न हो जाए और दोनो देशो को आर्थिक विकास के लिए उन पर निर्भर रहना पडे। ब्रिटेन ने भारत को स्वतंत्र कर भारत और पाकिस्तान की अर्थव्यवस्थाओ मे अपना नियंत्रण बरकरार रखा। 7 जून, 1947 को ब्रिटिश पत्र 'इकोनामिस्ट' माउण्टबेटन समझौते के समय लिखा था, 'यदि डोमीनियन स्टेटस को तिलांजलि नही दी जाती है तो हो सकता है कुछ रस्मी नाता भी कायम रह जाए और अगर कोई नया राजनैतिक रूप अपनाया गया तो ब्रिटेन और भारत के बुनियादी सामरिक तथा आर्थिक सम्बन्ध तो हर हालत मे बने रहगे।'' माउण्टबेटन की जिस योजना के आधार पर मुल्क का बटवारा किया गया था उससे भारत के सभी आर्थिक सम्बन्ध खण्ड-खण्ड हो गए और दोनो देशो को अपने आर्थिक विकास के रास्ते अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा।

2

विभाजन और साम्प्रदायिक सन्दर्भ

हिंदुस्तान के विभाजन की प्रक्रिया बहुत कम समय में पूरी की गई। यह इतनी जल्दी हुआ कि जनता असमंजस में रह गई। इससे पहले कि व्यक्ति अपने परिवार के भविष्य के बारे में सुव्यवस्थित ढंग से कोई निर्णय ले पाता उसे जबरदस्ती एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर फेंक दिया गया था। भारत का जब बर्मा से अलग करके, सिंध और उड़ीसा प्रांत बनाए गए थे तब इससे अधिक समय लगा था। बर्मा को अलग करने में तीन वर्ष लगे थे। सिंध को बम्बई से अलग करने में दो वर्ष और उड़ीसा को बिहार से अलग करने में दो वर्ष लगे थे लेकिन पाकिस्तान बनाने में सिर्फ दो महीने 12 दिन का समय दिया गया। 3 जून, 1947 को 'माउण्टबेटन योजना' स्वीकार की गई और 15 अगस्त, 1947 को दोनों अधिराज्यों की स्थापना कर दी गई। बटवारे की कार्यवाही इतने कम समय में पूरी की गई जिससे दोनों देशों को व्यापक समस्याओं का सामना करना पड़ा।

पाकिस्तान और हिंदुस्तान से जनता के तबादले के कारण दोनों देशों के आर्थिक विकास में गम्भीर रुकावटें पैदा हुईं। किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए कुशल कारीगर, महनती किसान, उपजाऊ भूमि और सुव्यवस्थित योजना नितांत अनिवार्य है। और यह सब शान्तिपूर्ण वातावरण में होना आवश्यक है। पाकिस्तान, फ्रंटियर और सिंध में ऊंचे पदों पर हिंदू अधिकारी थे। इंजीनियर और ऊंची ऊंची टेक्निकल (औद्योगिक) जगहों पर भी हिंदू अधिक थे। मुसलमान अच्छे कारीगर, मैकेनिक, फायरमैन और कुशल मजदूर वर्ग के श्रेणी में थे। पाकिस्तान में 70 प्रतिशत हिंदू और सिख बड़े बड़े ऊंचे टेकनिकल पदों पर थे। इन हिंदुओं और सिखों के एकाएक चले आने से पाकिस्तान को गम्भीर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा।

इसी प्रकार पश्चिमी पंजाब, सीमा प्रांत और बिलोचिस्तान में हिंदू और सिख कल कारखाने चलाते थे। फलों और मेवों का व्यापार करते थे। गोविन्द सहाय के अनुसार, इन इलाकों का लगभग 70 प्रतिशत दौलत और व्यापार इन्हीं

हिन्दू और सिखों के हाथ मे था। यहाँ की बीमा कम्पनियो, बैंको, मिल, कारखानो सभी मे उनका प्रभुत्व था। इनके पाकिस्तान से हटते ही पाकिस्तान का आर्थिक ढाचा डगमगा गया जिससे पाकिस्तान को गम्भीर सकट का सामना करना पडा।

पाकिस्तानी क्षेत्रो मे अधिकाश व्यापारी हिन्दू और सिख थे। उनके वहाँ से आने के कारण मजदूर और कारीगर ही रह गए थे जिनमे कुम्हार, तेली, नालबद, लोहार, राज, खेतों मे काम करने वाले मजदूर और भिश्ती थे। दूसरी ओर पूर्वी पजाब से मुसलमान कारीगरों के पाकिस्तान जाने के कारण और हिन्दू, सिक्ख व्यापारियो के पूर्वी पजाब मे आने के कारण यहाँ कुशल कारीगरो का नितान्त अभाव हो गया, जिसके फलस्वरूप दोनों देशों की अर्थव्यवस्था पर इसका असर पडा। जो चीजें पाकिस्तान मे पदा होती थी, विश्व बाजार मे उसका मूल्य गिरा। पाकिस्तानी इलाको मे रुई की पैदावार अधिक होती थी और उसकी खपत पूर्वी भाग मे हाती थी, जिससे हजारो मुस्लिम कारीगर अपना जीवन यापन करते थे। लेकिन दोनो देशो मे व्यापार सम्बन्ध खत्म हो जाने के कारण वहाँ की रुई बेकार हो गई। यही हालत मेवा, सरदा, बादाम, अगूर के व्यापारियो की थी। वहाँ मेवा काफी सस्ता था और हजारो खानदान जिनका जीवन यापन इसी से होता था, उस समय परेशान हो गए।

वस्तुत हिन्दुस्तान से जो मुस्लिम शरणार्थी पाकिस्तानी इलाको म गए वे सम्पन्न इलाको से गरीब और पिछडे हुए इलाको मे गए। इसका उनकी मानसिक स्थिति पर अत्यधिक गम्भीर प्रभाव पडा। लीग ने उनको जो सब्जबाग दिखाए थे वे वहाँ जाते ही खत्म हो गए, जिसके कारण पाकिस्तान की सरकार और शरणार्थियों मे सघर्ष बढता गया। गोविन्द सहाय ने इस सदर्भ मे लिखा है, "मरो या मर जाओ' के नारे लगाकर सरकारी इमारतो पर हमला बोल दिया गया और पाकिस्तान सरकार को गोली चलानी पडी। इसी मन स्थिति के कारण यहा से जाने वाले मुस्लिम शरणार्थियो ने वहा से आने वाले सम्पन्न हिन्दू और सिखो पर घातक हमले किए, सामूहिक लूटमार की। इन आक्रमणो के पीछे हिन्दुओ की जायदाद लूटने की मशा काम कर रही थी और इसी नीयत के कारण साम्प्रदायिक कत्ल हुए, रेलगाडियो पर सामूहिक आक्रमण किए गए।

इस लूटमार का एक कारण यह भी था कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के शरणार्थियो का वह काम नही मिल सका जिसके लिए वे योग्य थे। अमृतसर मे दरियो की फक्टरिया थी, उनमे काम करने वाले मजदूरो के पाकिस्तान जाने से एक ओर तो उन्हें पाकिस्तान मे उचित काम नही मिल सका और दूसरी ओर योग्य कारीगरो के अभाव मे अमृतसर मे दरियो के व्यापार पर गम्भीर असर

पड़ा। यही स्थिति मजदूरो, फिटरो, पादरियो और ड्राइवरो की थी जो रेलो पर काम करना चाहते थे परन्तु पाकिस्तान मे रेलो और गाड़ियो को चलने के लिए न तो कोयला था और न ही पेट्रोल। पाकिस्तान की शरणार्थी समस्या पर वहाँ के समाचार पत्र ने लिखा था—जहा 60 लाख से अधिक मुसलमान पाकिस्तान मे आए हैं, वहा हम 6 मुस्लिम क्लक भी अभी तक नही मिल पाये हैं जो लाहौर के बैंको मे लेजरो का चार्ज लेकर कम से-कम दिन मे दो घण्टे ही अपने बैंको को चला सकें। लाखो कसाई पूर्वी पजाब से पाकिस्तान पहुँच गए हैं जिन्होने प्रारम्भ मे अपने काम को चलाने के लिए गोश्त को काफी सस्ता कर दिया और आइसक्रीम और फालूदा के बजाय प्रारम्भ म कबाब की काफी धूमधाम रही। इससे पाकिस्तान की सरकार को जानवरो की कमी के कारण न केवल घी और दूध की बल्कि खेती के लिए बैलो और कटरो की भी कमी पड गई।

1948 के अन्त तक जनसख्या का बटवारा लगभग पूरा हो चुका था परन्तु इस बटवारे के कारण दोनो देशो के समक्ष अनेक समस्याए पैदा हो गईं। पश्चिमी पजाब से लगभग साढे तीन लाख कृषक परिवारो को पूर्वी पजाब सरकार ने, मुसलमानो द्वारा छोड़े हुए गाँवो मे बसाया। जो हिन्दू व सिख पश्चिमी पजाब से पूर्वी पजाब आए, उनकी सम्पत्ति का नुकसान अधिक हुआ। उस नुकसान की पूर्ति यहाँ भारत मे न हो सकी। औसतन दस एकड की बजाय साढ़े सात एकड़ जमीन उन्ह मिली। डा० फौजा सिंह न अपने लेख 'पजाब बटवारा' म इन आकडो का विस्तार से वणन किया है। इसी प्रकार पश्चिमी पजाब म हिन्दू व सिख लगभग 51000 दुकानें व व्यापारिक सस्था छोड़कर आए थे जबकि मुसलमान भारत मे केवल 170 0 दुकानें छोड़कर गए।

इस प्रकार जनता की अदला बदली के कारण दोनो देशो को गम्भीर आर्थिक सकट का सामना करना पड़ा। पाकिस्तान म हिन्द यूनियन और अन्य रियासतो से लगभग 64 65 लाख शरणार्थी गए और हिन्द यूनियन म 55 लाख शरणार्थी आए। इस विशाल सख्या को, दोनो देश की सरकारो को, रोजगार दिलाने और फिर से बसाने की व्यवस्था करनी थी। इस समस्या का कोई भी तत्कालीन हल नही निकल पाया लिहाजा व्यापक स्तर पर साम्प्रदायिक दगे व लूटपाट की घटनाए हुई।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा व अकाली दल ने योजनाबद्ध तरीको से दगो को सचालित किया। मा० तारासिंह के श्रद्धालु सिखो व राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ के हिन्दुओ ने मिलकर कायक्रम बनाया जिसके तहत 11-12 अगस्त की मध्य रात्रि को अपने कायक्रम का पहला चरण पाकिस्तान स्पेशल ट्रेन को गिदवाहा के निकट नष्ट कर पूरा किया। इस समय गाँव गाँव म हथियार बनाने की भटटियाँ चलती थी। ब्रिटिश अफसरो से

अतिरिक्त मुस्लिम लीग और राष्ट्रीय स्वय सवक सघ के नेताओ ने भी हिन्दू व मुसलमानो के लिए हथियारो का प्रबन्ध किया।

इन तमाम स्थितियो से निपटने के लिए हिन्दुस्तान व पाकिस्तान की सरकारों न कोई योजना नही बनाई। 6 दिसम्बर, 1947 को दोनो देशो की सरकारो ने मार्च, 1947 के पश्चात किए गए धर्म परिवतन को मान्यता न देने का निणय किया जिसके फलस्वरूप लोगो को अपनी इच्छा के विपरीत नये देश। मे लौटने के लिए बाध्य होना पडा।

इसी के समानान्तर मुस्लिम लीग ने इस्लाम की आड लेकर धर्मभीरु जनता को उत्तेजित करने का काय किया और उनके जेहन म यह बिठाने की कोशिश की कि यदि पाकिस्तान न बना तो हिन्दू हमे खा जायेंगे। इसके साथ-साथ हिन्दुवादी सस्थाओ न अखण्ड व अविभाजित भारत की मांग की। जब भारत विभाजित हो गया तो हिन्दुवादी सस्थाओ ने यह प्रचार किया कि भारत की पवित्र भूमि पर मुसलमानो को रहने का कोई अधिकार नही है। भारतवर्ष पूणरूप से हिन्दुओ का है और इस पर केवल हिन्दुओ को ही राज्य करने का अधिकार है। अत शस्त्र के बल स पाकिस्तान के अस्तित्व को खत्म कर अखण्ड भारतवष स्थापित करना है। उधर मुस्लिम समुदाय मे यह भावना जोर पकड रही थी कि मुसलमान सदियो तक हिन्दुस्तान पर हुकूमत करते रहे हैं और इनसे ही अंग्रेजो ने राज्य छीना था इसलिए अंग्रेजी हुकूमत खत्म होने के बाद मुस्लिम राज्य कायम करना उनका कानूनी हक है। इस सोच की वजह से भी साम्प्रदायिक दगो म तीव्रता आई।

जब दग समाप्त हो गए तो एक बात साफतौर पर उभरकर सामने आई कि दगो का शिकार खाते पीते घर के लोग नही हुए बल्कि वे लोग हुए जो गरीब थे, दमित थे, असहाय थे और छोटा मोटा काम धधा करते थे। प्रमुख रूप से निम्न-मध्यवर्गीय व्यक्ति ही विभाजन की विभीषिका का शिकार हुआ। उच्चवर्गीय या सम्पन्न घराने के लोग हवाई जहाज के माध्यम से या अन्य किसी माध्यम से सुरक्षित इलाको म पहुच गए। उनके परिवार का एक भी व्यक्ति आहत नही हुआ।

15 अगस्त के बाद पजाब मे व्यवस्था बनाए रखने के लिए माउण्टबेटन ने 5500 आदमियों की एक विशेष सेना 'पजाब सीमा सेना' स्थापित की जिसका नेतृत्व एक अंग्रेज मेजर जनरल टी० डब्ल्यू रीस को सौंपा गया तथा जिनमे अधिकाश गोरखा सनिक सम्मिलित किए गए। माउण्टबेटन ने दगो से निपटने की जो भी घोषणा की थी वह सब हवाई साबित हुई।

विभाजन के दौरान जितने व्यापक स्तर पर जनता की अदला बदली की गई, उसकी मिसाल विश्व के अन्य किसी देश मे देखने को नही मिलती। इस

अदला बदली के दौरान स्त्रियो को अत्यन्त वीभत्स यत्रणा भोगनी पडी। दोनो सम्प्रदायो की स्त्रियो के साथ व्यभिचार किया गया, उन्हें अपमानित और प्रताडित किया गया, तथा नगा करके उनके जलूस निकाले गए। एक देश दूसरे देश के साथ भयकर कटुता रखता है लेकिन एक देश के लोग दूसरे देश की स्त्रियो के साथ ऐसा घृणात्मक व्यवहार नहीं करते जैसा विभाजन के दौरान देखने को मिला। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने बडी होशियारी से जनता की क्रान्तिकारी शक्ति को कुण्ठित किया और जो हिंसा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ होनी थी वह आपस मे होने लगी, जिनसे दोनो सम्प्रदायो की स्त्रियो की दशा अत्यधिक दयनीय हुई। स्त्रियो के अग अग करके उनके शरीर पर विभिन्न घृणित नारे लिखकर उन्हें एक देश से दूसरे देश म हाक दिया गया। जो स्त्रिया दुर्भाग्यवश अपने परिवार के साथ न जा सकी उनके साथ दूसर सम्प्रदाय वालो ने अमानवीय व्यवहार किया और जो स्त्रिया किसी-न किसी तरह अपने परिवार के बीच पहुची, परिवार द्वारा ग्राह्य नही हुइ। वे लाछित और प्रताडित ही हुइ।

साम्प्रदायिक दगे

काग्रेस और लीग की महासमितियो ने देश का विभाजन स्वीकार कर लिया था पर सामान्य जनता ने इसे स्वीकार नही किया था। विभाजन के अडतालीस घण्टे बाद हिन्दू और मुसलमानों को लेकर भीषण साम्प्रदायिक दगे हुए। इन दगो का प्रारम्भ पूर्वी पजाब और पश्चिमी पजाब मे भयकर हिंसा के साथ हुआ। दोनो सम्प्रदाय की भीड ने एक दूसरो पर आक्रमण किया। निरीह आदमियो, स्त्रियो, बच्चो को मौत के घाट उतार दिया गया। स्त्रियों को नीलाम किया गया, उन पर पाशविक अत्याचार किए गए। इस प्रकार की घटनाओ क शिकार होने वाले लोगो के निश्चित आकडे तो नही एकत्रित किए जा सकते लेकिन फिर भी नेहरू के घनिष्ठ मित्र और उनकी जीवनी लेखक लेनार्ड मोरले के अनुसार सिर्फ पजाब मे 6 लाख लोग मारे गए एक करोड चालीस लाख शरणार्थी बना दिए गए और एक लाख युवतियो का अपहरण किया गया। यह सख्या सिर्फ पजाब की है। दोनो देशो मे विभाजन से प्रभावित लोगो की सख्या कितनी होगी इसका अन्दाजा आसानी से लगाया जा सकता है।

दिल्ली मे साम्प्रदायिकता अपने वीभत्स रूप मे प्रकट हुई। इन दगो को बद कराने के लिए गाधी जी एक ओर देश की जनता से अपील कर रहे थे तो दूसरी ओर आर० एस० एम० वाले हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए म्लेच्छो को अपने देश से बाहर निकालने का आह्वान कर रहे थे। इनकी सहायता कुछ पूजीपति, जागीरदार व देशी नरेश कर रहे थे, जिसके कारण दिल्ली म ही नहीं पूरे भारत मे भयानक नरसहार हुआ।

दूसरी ओर पूर्वी और पश्चिमी पजाब की सीमाओ पर अल्प-सख्यको का जीवन सुरक्षित नही रह गया था। समाज विरोधी तत्व, समाज के विभिन्न भागो मे शीतयुद्धीय स्थिति उत्पन्न करने की कोशिश कर रहे थे। शरणार्थियो की समस्याओ को व साम्प्रदायिक तनाव को कम करने के लिए तत्कालीन गृहमत्री कोई भी ठोस कदम उठा सकने म असमर्थ थे। गाधी जी दिल्ली के साम्प्रदायिक तनाव को लेकर चिंतित थे। इन दगो को बद कराने के लिए व शातिपूर्ण वातावरण बनाने के लिए गांधी जी हिंदू और मुसलमानो से सयुक्त अपील कर रहे थे और इसके लिए वे अनशन पर भी बैठने के लिए तयार थे लेकिन दूसरी ओर आर० एम० एस० जैसी पार्टियो ने गांधी जी को आगाह किया था कि यदि उन्होने अपनी कार्यवाही बद न की तो उनकी आवाज हमेशा के लिए बद कर दी जाएगी। अनेक नेताओ के आग्रह करने पर और दिल्ली मे हिंदू-मुस्लिम एकता के कुछ प्रयत्नो को देखकर गाधी जी ने अपना अनशन समाप्त किया था। वे अनशन समाप्त करने के बाद बिड़ला हाउस म प्राथना सभा के लिए जा रहे थे कि उनकी हत्या के प्रयास म, उन पर बम फेंका गया। पुलिस जाच करने के पश्चात भी यह पता न लगा सकी कि उन पर बम किन लोगो ने फेंका। इस घटना के बावजूद दिल्ली मे गाधी जी की रक्षा के लिए कोई ठोस कदम नही उठाया गया, यदि उनकी सुरक्षा की व्यवस्था की गई होती तो नाथूराम गोडसे हथियारो सहित उसमे प्रवेश नही कर सकता था। 30 जनवरी, 1948 को ज्यो ही गाधी जी प्रार्थना सभा मे आए त्यो ही नाथूराम गोडसे उठ खडा हुआ, उसने कहा—आज आपको आने मे बहुत देरी हुई, इससे पहले गाधी जी कुछ कहते नाथूराम गोडसे ने तीन गोलिया चलाकर उनकी हत्या कर दी।

बाद की जाच-पडतालो से यह सिद्ध हो गया था कि नाथूराम का सम्बन्ध राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ से था और गाधी जी की हत्या एक सुनियोजित योजना थी।

साम्प्रदायिक दगो के आधार

विभाजन के सदभ म जो साम्प्रदायिक दगे हुए उनके मूल मे न सिर्फ राजनैतिक कारण थे बल्कि अनेक आर्थिक और सामाजिक कारण भी थे। जो धार्मिक एव राजनैतिक कारणो से अधिक गहन और तीव्र थे। इस समय होने वाले विभिन्न दगो ने साम्प्रदायिकता का जामा पहन लिया था। ये दगे दो धर्मों के लोगो मे नही बल्कि दो वर्गों मे हुए। जैसा कि के० वी० कृष्णा ने इस सदभ म लिखा है, "साम्प्रदायिक प्रश्न का धार्मिक समस्याओ से कोई सम्बन्ध नही है, उसका सम्बन्ध है—लाभ, लूट एव प्रतिशत के अनुग्रह एव पक्षो से। साम्प्रदायिक प्रश्न साधारणत विभिन्न मतो के पेशेवर वर्गों के अलग-अलग तबको की आपसी

लड़ाई का प्रश्न है। इसी प्रकार कुछ और संघर्ष भी थे जो मूल रूप से आर्थिक थे लेकिन उन्हें साम्प्रदायिक रूप दे दिया गया। सामान्यतः किसान मुसलमान थे और जमींदार हिन्दू। कहीं-कहीं किसान हिंदू थे और जमींदार मुसलमान। उनका यह संघर्ष शोषक और शोषितों का संघर्ष था लेकिन इन संघर्षों को हमेशा हिंदू मुस्लिम संघर्ष के रूप में देखा गया।

अपनी पुस्तक 'प्राबलम आफ माइनरटीज' में के० बी० कृष्णा ने इन सारे संघर्षों का निम्न वर्णन प्रस्तुत किया है, विभिन्न मतों और सम्प्रदायों के पेशेवर वर्गों में संघर्ष है। हिंदू पेशेवर वर्गों की तुलना में मुस्लिम, सिख, भारतीय ईसाई, एंग्लो इंडियन और अछूत पेशेवर वर्ग, शैक्षिक, आर्थिक और राजनतिक दृष्टि से पीछे थे। इस संघर्ष ने अल्पसंख्यकों या निर्वाचक ईसाइयों की समस्या का नाम इख्तियार कर लिया है। यह संघर्ष विभिन्न मतों, सम्प्रदायों के वाणिज्यिक, औद्योगिक और बनिया व्यापारी वर्गों में फँसा हुआ है। हिंदू सूदखोर और मुसलमान कर्जखोर, हिंदू जमींदार, और मुसलमान किसान, हिंदू और मुसलमान सूदखोर, हिंदू और मुसलमान जमींदार इनके संघर्ष भी इसी श्रेणी में आते हैं।

इन बड़े बड़े हिंदू और मुस्लिम सामन्तों ने, श्रमिक वर्ग को अपने अधिकारों के प्रति सचेत न होने देने के लिए तथा साम्प्रदायिक तनाव को बढ़ाने के लिए आर० एस० एस० और मुस्लिम नेशन गार्ड की धन आदि से सहायता की। पंजाब में हिंदू व सिख सामन्तों और व्यापारियों की अधिकता थी वहां मुस्लिम सामन्त थे लेकिन उनकी शक्ति बहुत कम थी। हिंदू व सिखों का उद्योग व्यापार, व बैंकिंग में बड़ा हिस्सा था। लाहौर में 186 कारखानों में से 108 के मालिक गैर मुस्लिम थे। वे मुसलमानों से आठ गुना अधिक बिक्री कर लेते थे व व्यापार, बैंक व्यापारिक संस्थाओं, बीमा कम्पनियों और औद्योगिक संस्थाओं में उनका हिस्सा 75 प्रतिशत से अधिक था। पूरे पंजाब में, सभी औद्योगिक संस्थानों में गैर मुस्लिम, आधे से अधिक के मालिक थे। पंजाब के केन्द्रीय जिलों में सिख सबसे बड़े भू स्वामी थे। लाहौर डिवीजन में समूचे भू कर का 46 प्रतिशत हिस्सा केवल सिख देते थे। पंजाब में खेती के पश्चात महाजनी सबसे महत्वपूर्ण काम था। महाजनी का काम मुख्यतः हिंदू व सिखों के हाथ में था। पश्चिमी पंजाब के मुस्लिम किसान मुल्तान व रावलपिंडी के हिंदुओं व सिखों के भारी ऋणी थे। मुसलमानों की जनसंख्या भी उनकी आर्थिक विपन्नता को प्रकट करती थी। मुस्लिम जनसंख्या का 1/3 हिस्सा कहीं भी स्थिर क्रम से आबाद नहीं था तथा उनमें फकीर, जुलाहे, सपेरे, कुम्हार, बढ़ई, नाई, लुहार धोबी, कसाई, मिरासी आदि शामिल थे।

जब समाज में आर्थिक विपन्नता हो तब वहां पर होने वाले दंगे साम्प्रदायिक नहीं हो सकते। पंजाब में दंगों की शुरुआत तब हुई जब मुसलमानों द्वारा हिंदू

व्यापारियों की सम्पत्ति नष्ट की गई। प्रतिहिंसा में सम्पन्न हिंदुओं व सिखों ने मुसलमानों की हत्याएं की। इस प्रकार की घटनाओं से आर्थिक असमानता की घृणा उदघाटित होती है। ऐसी स्थिति में गरीब लोग सम्पन्न लोगों की सम्पत्ति नष्ट करते हैं और सम्पन्न लोग गरीब लोगों की हत्याएं करते हैं। ये स्थितियां न सिर्फ पंजाब में बल्कि भारत के उत्तर-पश्चिम भागों में भी थीं। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से, हिन्दू-मुस्लिम तनाव के कारणों पर शोध करते हुए, वलयु इरविन ने लिखा है—उत्तर-पश्चिम भारत में हिन्दू जागीरदार थे और मुसलमान किसान थे। उत्तर-पूर्वी भारत में हिंदू जमींदार थे और मुसलमान उनके टैनेंट (काश्तकार)। इसी तरह दुकानदार, व्यापार करने वाले और बड़ी-बड़ी नौकरियों पर हिन्दू थे जबकि मुसलमान दस्तकार, मजदूर और किसान थे। जब मुसलमान किसी को रुपया उधार देते थे तो उनसे ब्याज नहीं लेते थे क्योंकि कुरान में ब्याज लेना वर्जित है। लेकिन जब यही मुसलमान हिंदू या बनिए से या हिन्दू द्वारा संचालित बैंक से रुपया उधार लेते थे तो उन्हें ब्याज भी देना पड़ता था। हिन्दुओं द्वारा ली जाने वाली ब्याज की दर बहुत अधिक थी। गरीब होने के कारण मुसलमान उस दर से रुपया वापस नहीं कर पाते थे जिसके कारण साम्प्रदायिक दंगे होते थे। लाहौर की संस्था अहमदिया अन्जुमन ए इस्ती ने एक पर्चा निकाला था जिसमें हिन्दू बनियों द्वारा मुसलमानों से लिए गए कर्ज के बारे में बताया गया था। इस पर्चे में बताया गया था कि गरीबी मुसलमानों का स्थायी लक्षण बन गई है। शायद ही कोई मुसलमान ऐसा हो जो हिन्दू बनिया से रुपया न उधार लेता हो। दिन-प्रतिदिन मुसलमानों की चल सम्पत्ति हिन्दुओं के हाथों में जा रही है और जो भी मुसलमान कमाते हैं उससे हिन्दू समुदाय मजबूत हो रहा है। पंजाब के मुसलमान प्रतिवर्ष 50,0000,000 रुपए कमाते हैं जिसमें वे ब्याज के रूप में अपनी कमाई का आधा 2,50,00),000 रुपए हिन्दू बनियों को दे देते हैं। दूसरे शब्दों में, जो कुछ भी हम कमाते हैं वह सब हिन्दुओं के पास चला जाता है और भारतवर्ष में हमारी स्थिति दास जैसी होकर रह गई है। अपने द्वारा कमाई गई अधिकांश सम्पत्ति को हिन्दुओं के हाथों में जाते देखकर मुसलमानों में हिन्दुओं के प्रति स्थाई घृणा हो गई। ये घृणा साम्प्रदायिक दंगों के दौरान हिंसा के रूप में प्रकट हुई।

विभाजन के बाद हुए साम्प्रदायिक दंगों के मूल में मुसलमानों की गरीबी और हिन्दुओं की जागीरदारी जिम्मेदार थी। न सिर्फ दिल्ली में वरन् लाहौर, अमृतसर में मुसलमान शहर की आर्थिक व्यवस्था के आधार थे। इन मुसलमानों के पास दस्तकार उद्योग थे। ये सोने चांदी के आभूषणों को ठीक करते थे और जूते बनाते थे। इनमें दरजी, बढ़ई, राजगीर, किताबों पर जिल्द चढ़ाने वाले, लिथोप्रेस मशीन पर काम करने वाले, जुलाहे, नाई आदि थे। जब यह

दिल्ली छोडकर जाने लगे तो यहां के हिन्दुओ को यह एहसास हो चला था कि इन लोगो के बिना हमारा जीवन दूभर हो जाएगा। यदि ये मुसलमान दिल्ली से चले जाते हैं तो उनसे मे व्यापार करने वालो के समक्ष अनेक कठिनाइया होगी। इसलिए एक हिन्दू फर्नीचर व्यापारी ने मुसलमानो को यह सलाह दी थी कि वे पण्डित जवाहरलाल नेहरू से मिलें और यह माग रखें कि उन्हें अलग बसाया जाए और उनकी सुरक्षा की पूरी जिम्मेदारी ली जाए और यदि ऐसा नहीं होता तो उनका व्यापार चौपट हो जाएगा। वस्तुत मुसलमान शहर के प्रमुख उद्योगो म छोटे स्तर पर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे। हिन्दुस्तान मे उन्हें अपनी सुरक्षा नही दिखाई दे रही थी। लेकिन वे पाकिस्तान भी नही जाना चाहते थे क्योकि उनके जाने से उनके व्यवसाय पर असर पड सकता था। हिन्दू-मुसलमानो की यह टकराहट दगों के रूप मे सामने आई।

हिन्दू मुस्लिम दगो के आर्थिक कारणो के साथ साथ कुछ धार्मिक और सामाजिक कारण भी थे। सर फिरोज मैनशायर ने हिन्दू मुस्लिम दगो के कारणो का पता हिन्दुओ और मुसलमानो से लगाया, उन्होने इन दगो के भिन्न-भिन्न कारण बताए। गाय और सूअर को लेकर विभाजन के दौरान और उससे पहले भी अनेक हिन्दू मुस्लिम दगे हुए। मुसलमान गाय का इसलिए खाते हैं क्योकि यह बकरी स सस्ती होती है। मुसलमानो और हिन्दुओ ने मनशायर का दगो के निम्नलिखित कारण बताए—

1 हम मुसलमान, हिन्दुओ से घृणा करते हैं क्योकि हिन्दू अनेक देवताओ की उपासना करते हैं और हम लोग एक ईश्वर को मानते हैं।
2 हम लोगो को गाय का मास खाना चाहिए ताकि हम अधिक बहादुर और मजबूत बन सकें।
3 मुसलमान नमाज म किसी भी किस्म की आवाज (शोर) पसन्द नही करते (हिन्दू मुस्लिम दगो मे इस पहलू ने बहुत बडी भूमिका अदा की। सामान्यत हिन्दुओ और मुसलमानो की वन्दना का समय एक ही होता है। मुस्लिम शात वातावरण म नमाज पढते हैं जबकि हिन्दुओ की आरती मे शख, घटो का बजना अनिवार्य समझा जाता है।) इस कारण भी अनेक साम्प्रदायिक दगे हुए।
4 सभी मुसलमान यह विश्वास करते हैं कि यदि धर्म की रक्षा के लिए प्राण त्यागेंगे तो वे सीधे स्वर्ग मे जाएगे।
5 हमारे धार्मिक नेता अशिक्षित हैं जिसके फलस्वरूप ये दगे होते हैं।
6 अधिकाश दगे अफवाहो से शुरू होते है।
7 हमारे स्कूलो म शिक्षा साम्प्रदायिक ढग से दी जाती है।
8 हिन्दू मुस्लिम पत्रिकाए तथ्यो का तोड मरोड कर पेश करती हैं जिससे दगे

प्रारम्भ होते हैं।

इन तमाम कारणो के अतिरिक्त और भी अनेक सामाजिक और धार्मिक कारण थे। इनमे से कुछ कारण ऐसे थे जो जान-बूझ कर पैदा किए गए थे और कुछ कारण तथ्यो को गलत ढग से प्रस्तुत करने से पैदा हो गए थे। जहा तक गाय का प्रश्न है हिन्दू गाय की पूजा करते हैं जबकि मुसलमान गाय का मास खाते हैं क्योकि गाय का मास पौष्टिक और सस्ता होता है। हिन्दू गाय की पूजा कैसे करने लगे इसके बारे मे फूलर (सर बम्पफेल्ड फूलर, इम्परर आफ इण्डिया) ने लिखा है, 'वैदिक साहित्य मे गाय की पूजा करने का कोई भी सकेत नही मिलता। उनके विचारानुसार ब्राह्मणो ने अपना महत्त्व प्रतिपादित करने के लिए इसकी पूजा करवानी प्रारम्भ की होगी। पुराणो मे ब्राह्मण को गाय भेंट करने के अनेक सदर्भ मिलते हैं। उसमे गाय की अलग से स्तुति भी की गई है। चूकि पुराणो मे *इसका सम्बन्ध ब्राह्मणो से जोडा गया, इसलिए गाय को भी वदनीय माना* जाने लगा।'

हिन्दुओ मे निम्न वर्ग के लोग विशेषत चमार, डोम आदि सूअर रखते थे। खाने के साथ-साथ योरोप के देशो मे इसका निर्यात भी होता था। निम्न जाति के ये लोग *'पिगरी' (सूअर पालने का स्थान)* भी रखते थे। इसके विपरीत मुसलमानो के धर्म मे सूअर का स्पर्श भी मना था। हिन्दुओ द्वारा सूअर को रखने से भी दगे प्रारम्भ होते थे। सामान्यत यह देखा गया कि जब भी कोई हिन्दू-मुस्लिम दगा हुआ तब या तो मस्जिद मे या किसी अमीर मुसलमान के घर सूअर की टाग या उसके शरीर का कोई भाग पाया गया।

विभाजन के दौरान हुए साम्प्रदायिक दगो मे राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ, हिन्दू महासभा व मुस्लिम नेशनल गार्ड ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इन सस्थाओ का चरित्र निहायत प्रतिक्रियावादी और साम्प्रदायिक रहा। हिन्दुस्तान से मुसलमानो को बाहर निकालने का सबक आर० एस० एस० वालो ने फासिस्ट जर्मनी से ही सीखा था। हमारी राष्ट्रीयता मे गुरु गोलवरकर ने लिखा था कि 'जर्मन जाति का स्वाभिमान आज चर्चा का मुख्य विषय हो गया है। इन्होने जाति और सस्कृति की शुद्धता की रक्षा हेतु अनिवार्य जाति यहूदियो के निर्वासन द्वारा *ससार को विक्षुब्ध कर दिया है। और यह भी दिखला दिया है कि मौलिक* विभिन्नताओ के होते हुए जातियो और सस्कृतियो का सम्पूर्ण भाव से मिलकर एक हो जाना कितना असम्भव है। हिन्दुस्तान मे हमारे सीखने और लाभ उठाने के लिए यह एक अच्छा पाठ है। विभाजन के दौरान इसी सिद्धान्त को केन्द्र मे रखकर मुसलमानो को खदेडा गया। प्रचार के सभी साधनो मे राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ ने घृणा का सहारा लिया। गुरु गोलवरकर ने अपनी पुस्तक मे मुसलमानो का हमेशा शत्रु कहकर पुकारा। इनकी सभ्यता को भ्रष्ट सभ्यता का नाम

दिया । कपूर कमीशन (जिसकी नियुक्ति दगो की जांच के बारे मे हुई थी) ने गवाहियो के आधार पर सकेत किया कि साम्प्रदायिक हत्याओ म आर० एस० एस० का हाथ रहा । राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ और मुस्लिम नेशनल गार्ड की तरह हिन्दू महासभा ने भी साम्प्रदायिकता को बढाने म सहयोग दिया । इस सभी ने घोषणा की थी कि भारत से मुसलमानो और ईसाइयो को बाहर निकालकर हिन्दू राज्य की स्थापना करना उसकी नीति है ।

इस प्रकार विभाजन के दौरान साम्प्रदायिक दगे विभिन्न आर्थिक राजनैतिक-सामाजिक कारणो से हुए हैं और सुनियोजित तरीके से देश मे ऐसी परिस्थितिया तैयार की गई जिससे साम्प्रदायिक दगा को बढ़ने में मदद मिली ।

3

हिन्दी उपन्यास विभाजन युगीन साम्प्रदायिकता की अभिव्यक्ति

विभाजन से सम्बन्धित हिन्दी उपन्यास, विभाजन से उत्पन्न समस्याओ को, सामाजिक चेतना एव व्यक्ति की मनोदशा को पूर्ण गहराई के साथ प्रस्तुत करते हैं। इनका विवेचन करने मे उपन्यासकार, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का सहारा लेते हैं और दगो के दौरान साम्प्रदायिकता फैलाने वाली शक्तियो के चरित्र को उद-घाटित करते हैं। यह उपन्यास-साहित्य उन शक्तियो के निजी स्वार्थ को भी उदघाटित करते हैं, जो देश की प्रगति के रास्ते मे रोडा अटकाकर विकास के मार्ग को अवरुद्ध करते हैं।

ये उपन्यास विभाजन की राजनीति का तीव्र विरोध करते हैं और स्पष्ट कर देते हैं कि देश की जनता ने देश का विभाजन स्वीकार नही किया। विभाजन की स्वीकृति कांग्रेस और मुस्लिम लीग की उच्च स्तरीय बैठको तक ही सीमित रह गई, लेकिन इस स्वीकृति का सबसे बडा मूल्य देश की जनता को चुकाना पडा जो पाकिस्तान का अर्थ बिल्कुल नही समझती थी। ये उपन्यास इस सदर्भ मे उनकी पीडा की और इस पीडा के समय विकसित नई मानसिकता को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

ये उपन्यास शरणार्थियो की समस्याओ को, उनकी मनोदशा को तथा जीवन-व्यापार को अपनी समग्रता के साथ उदघाटित करते हैं। शरणार्थियो की सबसे बडी विडम्बना तो यह रही कि एक तरफ तो वे अपने देश से निर्वासित कर दिए गए तो दूसरी ओर जिस जगह वे गए वहा के निवासियो से उन्हे उपेक्षा और तिरस्कार ही मिला। नये स्थान पर इन शरणार्थियो को सरकार की ढुल-मुल नीतियो पर व स्थानीय लोगो की कृपा पर निर्भर रहना पडा। ऐसी स्थिति मे शरणार्थी अधिक समय तक सरकार पर आश्रित नही रहे और न ही अपनी दयनीय स्थिति का दोष अपने भाग्य को दिया वरन कठिन परिश्रम से स्वय को समाज मे रहने योग्य बनाया। शरणार्थियो के इन सघर्षों को ये उपन्यास किसी-

न किसी रूप मे अभिव्यक्ति देते हैं। विभाजन से यद्यपि समाज मे अनेक समस्याएं पैदा हुई, लेकिन इसके कुछ स्वस्थ परिणाम भी सामने आए। जनता की अदला बदली से समाज मे नई चेतना विकसित हुई व निवासिता म शिक्षित होने की भावना का विकास हुआ। ये भावना स्त्रियो म विशेष रूप से विकसित हुई क्योकि जो पीडा उन्हे भोगनी पडी वह पुरुषो को नही भोगनी पडी। इसलिए विस्थापित स्त्रियो ने स्वावलम्बी बनना चाहा जिसके फलस्वरूप अनेक स्त्रिया स्कूल-कालेजो मे जाने लगी और अनेक स्त्रिया दफ्तरो म पुरुषो के सामने बैठकर काम करने लगी। इस विभाजन स सस्कारों म बुनियादी परिवर्तन हुए। विभाजन की विभीषका से अनेक पुरातन और रूढिवादी सस्कारो का अन्त हो गया।

झूठा सच

यशपाल जी का 'झूठा सच' विभाजन के सदर्भ मे लिखा गया एक विशिष्ट उपन्यास है। इसमे लेखक ने 1942 से लेकर 1957 तक की घटनाओ को काल्पनिक रग देकर पाठको के समक्ष प्रस्तुत किया है। इस प्रक्रिया म वे देश विभाजन की पृष्ठभूमि स कथा का प्रारम्भ करते हैं और विभाजन से उत्पन्न नवीन सवेदनाए और सामाजिक आर्थिक सबधो से गुजरते हुए 1957 के आम चुनाव से कथा का अत करते हैं। विभाजन की सारी कटुता निम्न मध्यवर्गीय परिवारो को व आर्थिक रूप से पिछडे जन-समुदायो को भोगनी पडी इसलिए उपन्यास मे इन्ही लोगो की कथा कही गई है।

लेखक न भोला पाढे की गली मे रहने वाले निम्न मध्यवर्गीय परिवारो के जीवन चरित्रो को, उनकी सवेदना, उनके आचरण और उनमे सामाजिक सस्कारो को विभाजन के सदर्भ मे देखा है। इस गली के तमाम चरित्र तारा, पुरी, शीला, रतन अपन आसपास के परिवेश से सघर्ष करते हुए, सामाजिक रूढिया व प्रतिगामी मूल्यो का विरोध करते हैं। इस गली मे रहने वाले तमाम लोग उस व्यापक समाज के सदस्यो के प्रतीक बन जाते हैं जो विभाजन से प्रभावित होकर इधर-उधर भटकते हैं और अन्त म परिस्थितियो के विरोध मे उठकर अपने जीवन की दिशा को निश्चित करते हैं।

विभाजन की पृष्ठभूमि मे लिखे जाने के कारण विभाजन की राजनीति खुल कर सामने आती है। द्वितीय महायुद्ध के राजनतिक सदर्भ इस उपन्यास म चित्रित किए गए हैं। युद्ध के बाद ब्रिटेन को यह एहसास हो चला था कि काग्रेस की शक्ति क्षीण होती जा रही है और जनवादी शक्तिया तेजी से बढ रही हैं। ब्रिटेन इस तथ्य से भी वाकिफ हो चला था कि सभवत आदोलन का नेतृत्व, काग्रेस के हाथो स निकलकर देश की वामपथी पार्टिया के हाथो म आ जाए।

और यदि ऐसा हो जाता है तो भारत पर उसका नियन्त्रण हमेशा के लिए खत्म हो जाएगा। ब्रिटेन के इन प्रयत्नों की झलक उपन्यास में देखने को मिलती है। ब्रिटिश प्रतिनिधि मण्डल शिमले में सत्ता हस्तान्तरण के लिए कांग्रेस से समझौता करना चाहता है, लेकिन कम्युनिस्ट पार्टी इस प्रतिनिधि-मण्डल को फरेब समझती है। उसके अनुसार यह नहीं हो सकता कि लीग को पाकिस्तान भी मिल जाए और कांग्रेस को अखण्ड हिन्दुस्तान भी। लीग और कांग्रेस की इस टकराहट के कारण ही साम्प्रदायिक दंगे होते हैं। इन दंगों को रोकने के लिए कम्युनिस्ट पार्टी के लोग प्रयत्न करते हुए दिखाई देते हैं। लोगों को संगठित करने व साम्प्रदायिकता के विरुद्ध लड़ने के लिए यह पार्टी विशाल जुलूस निकालती है।

दूसरी ओर पाकिस्तान की माग के समर्थन में मुस्लिम लीग प्रदर्शन करती है। पंजाब में मन्त्रिमण्डल त्याग-पत्र देता है। मन्त्रिमंडल बनाने में असमर्थ रहते हैं। कांग्रेस भी पाकिस्तान के विरोध में सभाओं का आयोजन करती है और अंत में देश का बंटवारा स्वीकार करती है। 15 अगस्त, 1947 को देश को स्वतन्त्रता मिलती है और कांग्रेस के लोग ह्विस्की की चुस्कियों के साथ राष्ट्रीय पर्व का स्वागत करते हैं। कांग्रेस का अवसरवादी चरित्र, दूसरे भाग में उभरकर सामने आता है। कथा के प्रारम्भ में, लेखक, कांग्रेसी नेता सूद जी का परिचय देता है जिसके माध्यम से कांग्रेसी नेताओं की अधिकार लिप्सा और समझौतापरस्ती को दिखाया गया है। सूद और प्रसाद दोनों कांग्रेसी नेता, शरणार्थी युवतियों के प्रति विशेष रूप से आकर्षित होते हैं। सूद जी तारा से और प्रसाद जी कनक से अपनी भोगलिप्सा शान्त करना चाहते हैं। उपन्यास में एक स्थान पर कनक कहती है 'इन कांग्रेसियों ने गांधी जी से एक ही बात सीखी है कि चाहे जिस लड़की के कंधे पर हाथ रख लो। सभी अपने को राष्ट्रपिता समझने लगे हैं।'

यशपाल, देश की प्रतिगामी शक्तियों के घृणित स्वरूप को सामने रखकर यह बताने की कोशिश करते हैं कि यही शक्तियां देश की प्रगति के रास्ते में बाधा उपस्थित करती हैं। हिन्दू मुस्लिम तनाव पैदा कर उन्हें आपस में लड़ाती है। इन शक्तियों के वर्ग चरित्र के अन्तर्विरोधी पक्ष का उद्घाटन ही उपन्यास की सफलता है। इन शक्तियों के विरुद्ध जनता अपनी शक्ति चुनाव के दौरान प्रकट करती है। विजय की तमाम संभावनाओं के बावजूद भी सूद जी सत्रह हजार वोटों से हार जाते हैं और अंत में लेखक स्वीकार करता है, 'जनता निर्जीव नहीं है, जनता सदा मूक भी नहीं रहती। देश का भविष्य नेताओं और मन्त्रियों की मुट्ठी में नहीं बल्कि देश की जनता के हाथ में है।' यशपाल, उपन्यास के माध्यम से यह स्पष्ट कर देते हैं कि वर्तमान समाज गला सड़ा है, इसको बदलना होगा और इसको बदलेगी देश की जनता, जिसके हाथों में देश का भविष्य है। लेकिन क्या यह परिवर्तन एक नेता की हार से हो जाएगा ? यशपाल, समस्याओं का

विवेचन तो मार्क्सवादी दृष्टिकोण से करते हैं, परन्तु उसका समाधान उस दृष्टि कोण से नहीं दे पाए हैं। इसलिए वे कम्युनिस्ट पार्टी को वैकल्पिक रूप म प्रस्तुत कर पाने मे असमर्थ रहते हैं। वे समाज म क्रांतिकारी परिवर्तन, लोकतांत्रिक प्रणाली के माध्यम से चाहते हैं।

उपन्यास म एक ओर विभाजन के केन्द्र मे कार्य कर रही राजनीति को उद्घाटित किया गया है तो दूसरी ओर राजनीति के स्वरूप को भी उभारा गया है जो देश मे साम्प्रदायिक दंगे करवाती है और हिंसक वातावरण पैदा करती है। तत्कालीन परिवेश म सामान्य घटनाओं को भी रग देकर साम्प्रदायिक चेतना फैलाई गई। सोमराज साहनी परीक्षा म नकल करता हुआ मुसलमान अध्यापक द्वारा पकडा जाता है, लेकिन बुर्जुआनी प्रेस इस घटना को हिन्दू और मुसलमान का झगडा कहकर प्रस्तुत करते हैं, जिससे शहर म तनाव का वातावरण तैयार होता है। लेखक ने यह स्पष्ट कर दिया है कि ज्यो ज्यो पाकिस्तान की माग को लेकर काग्रेस और मुस्लिम लीग मे तनाव बढता गया त्यो-त्यो साम्प्रदायिक दंगो की सख्या मे वृद्धि होती गई और साम्प्रदायिक मानसिकता, विशेष रूप से निम्न मध्यवर्गीय परिवारो म विकसित हुई जो दगो के मूल म कार्य कर रही राजनीति को समझने म असमर्थ थे। भोला पाण्डे की गली मे, दो शिक्षित महिलाए लोगो को यह समझाने की कोशिश करती हैं कि वे मुसलमानो की दुकानो से वस्तुए न खरीदें क्योकि इन मुसलमानो ने बगाल मे हिन्दू औरतो के साथ पाशविक अत्याचार किए। इससे इस मोहल्ले की औरतो को यह बात बहुत जल्दी समझ मे आ जाती है कि मुसलमान बहुत ही घृणित लोग है और वे ही हिन्दुओ का कत्ल करते है। तारा जब यह प्रतिवाद करती है कि ये लडाइया अंग्रेज करवाते हैं तो मोहल्ले की अन्य औरतें उसका विरोध करती हैं। वे मानती है कि मुसलमान ही लडते है, हिन्दू बेचारे कहा लडते हैं।

इसके साथ ही लेखक ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि साम्प्रदायिक दगा के दौरान मरने वाले लोग अधिकतर गरीब हैं। यद्यपि तत्कालीन परिवेश म, इन फसादो मे धार्मिक घृणा और बदले की भावना कार्य कर रही थी, लेकिन मूल रूप से यह लडाई दो वर्गों की लडाई थी, जिसके पीछे आर्थिक कारण थे। यशपाल इन आर्थिक कारणो की ओर सकेत करते हुए ड्राइवर से कहलवाते हैं, 'बहिन जी, सच ही मुसलमानो ने हिन्दुओ को लूटा। कौशल्या देवी के समर्थन मे उत्साहित होकर ड्राइवर बोला, हिन्दू सैकडा बरस से हम लोगो को लूटते-निचोडते चले आ रहे हैं नही तो एक ही जमीन पर रहने वालो म अमीरी-गरीबी का इतना फर्क क्यो होता ? पजाब की सारी जायदाद हिन्दुओ के हाथ क्यो चली जाती ? गरीब पहले गुस्से म मुसलमान हुआ। दूसरा गुस्सा मजहब का है, पर गरीबो का भी है बहिन जी।' हिन्दुओ और मुसलमानो म बहुत ही

सुनियोजित तरीके से एक सम्प्रदाय को उठाया गया तो दूसरे को गिराया गया और इसी राजनीति के फलस्वरूप देश का विभाजन हुआ, हजारों की जानें गईं।

विभाजन की सबसे क्रूर यन्त्रणा स्त्री समुदाय को भोगनी पड़ी। मानसिक और शारीरिक दोनों स्तरों पर यह यन्त्रणा अत्यधिक तीव्र थी। यशपाल ने जितनी गहनता से विभाजन के संदर्भ में स्त्री समुदाय की मन स्थिति को चित्रित किया है उतनी सघनता से वे बहुत कम संदर्भों को अभिव्यक्त कर पाए हैं। तारा, बंती, उर्मिला, कनक, शीलो ये तमाम पात्र अलग अलग आयामों पर, स्त्री पर हुए अत्याचारों की कहानी को अलग-अलग संदर्भों में प्रस्तुत करते हैं। विभाजन से प्रभावित ये तमाम स्त्री पात्र विषम परिस्थितियों से संघर्ष करती हुई अपने व्यक्तित्व की तलाश करती हैं।

तारा निम्न मध्यवर्गीय परिवार से सम्बन्धित है। साम्प्रदायिक दंगों के मूल में कार्यरत शक्तियों को वह समझती है और भाग्यवाद के विरोध में स्वयं को खड़ा करती है। उसका विवाह एक ऐसे युवक से हो रहा है जो बदनाम है और जिसको वह नहीं चाहती। असद और पुरी के सहयोग से महत्त्वपूर्ण आश्वासन के कारण वह प्रारम्भ में इस विवाह का विरोध नहीं करती लेकिन जब उसे यह एहसास हो जाता है कि ये दोनों उसकी कोई मदद नहीं कर सकते तो वह इस विवाह का विरोध करती है, परन्तु अन्ततः उसका विवाह सोमराज साहनी से हो जाता है। सोमराज की बर्बरता के कारण अपनी ससुराल से उसे पहली ही रात भागना पड़ता है। साम्प्रदायिक माहौल में वह नब्बू द्वारा उठा ली जाती है लेकिन वहां भी आत्मसमर्पण नहीं करती और यथासंभव उसका विरोध करती है। हाफिज जी उसे अपने धर्म में लाना चाहते हैं लेकिन वह उसको स्वीकार नहीं करती क्योंकि उसके लिए धर्म मात्र बाहरी आडम्बर है।

उपन्यास के दूसरे भाग में वह शरणार्थी कैम्पों में दिखाई देती है। बंती का परिवार ढूंढने में वह उसकी मदद करती है, मिसेज अग्रवाल के घर में ट्यूटर बनती है और हर जगह परिस्थितियों के विरोध में स्वयं को खड़ा करती है लेकिन कहीं भी टूटती नहीं। सरकारी नौकरी पाने पर प्रत्येक स्तर पर अन्याय का प्रतिरोध करती है। कांग्रेसी नेता सूद जी और अपने भाई पुरी द्वारा भेजे गए सोमराज साहनी को भी वह अनुचित लाभ नहीं उठाने देती। हर मुमकिन तरीके से वह विभाजन से पीड़ित शरणार्थियों की सहायता करती है और अन्त में डा० नाथ से विवाह कर लेती है।

बंती की कथा विभाजन के दौरान स्त्रियों पर हुए अत्याचारों के एक अन्य आयाम को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर वह प्रताड़ित होती है। मुसलमानों द्वारा वह अपने गांव से उठा ली जाती है और नब्बू जैसे गुंडे उसके शरीर को रौंदते हैं। कौशल्या देवी की सहायता

से वह उस तरफ से छूटी है। तारा की सम्मति से वह अपने परिवार वालों को तलाशने में समर्थ होती है लेकिन उसका पति मनोहरलाल उसे अपने घर में रखने से इनकार कर देता है। उसकी मान्यता है, 'फिर घर में रख लें। गुण्डों वालों को यह मौका कैसे आई था? मुसलमानों ने इन्हें छोड़ा होगा? उन्होंने घरों के दरवाजे तोड़कर औरतों को खराब किया, इन्हें छोड़ दिया होगा।' कितनी ही इस व्यवहार के कारण कभी आत्महत्या कर लेती है। विभाजन के बाद यह अक्सर देखा गया कि अपहृत स्त्रियों को उनके परिवार वालों ने अपने घरों में नहीं रहने दिया। यशपाल ने कनक के माध्यम से इस सत्य को अभिव्यक्त किया है।

प्रथम भाग में 'झूठा सच' का कथानक पूरा नहीं हो पाया, इसलिए यशपाल ने दूसरे भाग को लिया। दूसरे भाग में यशपाल जी के सामने विस्थापितों की समस्याएं थी, आबादी परिवर्तन के दौरान विकसित हुई नवीन मानसिकता थी, अपनी जड़ से उखड़े हुए लोगों को फिर से बसाने का मसला था। इन तमाम घटनाओं का विस्तृत चित्रण उन्होंने दूसरे भाग में किया है।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने देश को आजादी तो दी थी लेकिन दो भागों में बाँट दिया ताकि दोनों देश अपने आर्थिक विकास के लिए उन पर निर्भर रह सकें। जातीय और धार्मिक आधार पर देश के विभाजन ने अनेक आर्थिक समस्याओं को जन्म दिया जिससे पश्चिमी पंजाब का आर्थिक ढाँचा काफी प्रभावित हुआ। केलिनक ने इस संदर्भ में लिखा है, 'एक आर्थिक और सांस्कृतिक समानता वाले देश के विभाजन ने भारत और पाकिस्तान में बहुत सी आर्थिक परेशानियाँ और राजनैतिक दुश्मनियों को जन्म दिया। उसने दोनों बाजार को सीमित कर दिया जिसने भौगोलिक रूप से आर्थिक विकास को धीमा कर दिया तथा भारत और पाकिस्तान की सरकारें इस बात के लिए विवश हुई कि वे उनसे सहायता लें जो कल तक उनके स्वामी थे।' इसके साथ-साथ लार्ड माउण्टबेटन ने जिन्ना के आबादी के तबादले का सिद्धान्त तो स्वीकार कर लिया था, परन्तु दोनों देशों की सीमाओं पर सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की थी। जिसके फलस्वरूप व्यापक पैमाने पर काफिलों पर आक्रमण हुए। माउंटबेटन ने पंजाब के शरणार्थियों की हिफाजत के लिए केन्द्र से कोई भी सहायता नहीं भेजी। गोविन्द सहाय का कहना है कि जनरल रीथ जो बाउंड्री सेना के कमाण्डर थे, उन्होंने भी जिस नीति का परिचय दिया उससे भी घोर निराशा ही उत्पन्न होती है। उसने अपनी फौजी सेना को पूर्वी पंजाब में भेजकर पश्चिमी पंजाब में हिन्दू और सिक्खों की सुरक्षा के लिए कोई सेना उसने नहीं भेजी। ठीक इसके विपरीत जब ब्रिटिश मंत्रियों से कोई हिन्दू व सिख किसी बात की शिकायत करता तो वह मुस्कुराते हुए कहते 'आप स्वतंत्रता चाहते थे, अब आपको स्वतंत्रता मिल गई।

उसमे जो कुछ हो रहा है उसे सहष सहन कीजिए। हम तो केवल एक निश्चित समय के लिए और एक खास काम के लिए नियुक्त हुए हैं।' तारा पंजाब से दिल्ली आते समय रास्ते मे हिन्दू काफिलो पर हुए अत्याचार को देखकर सन्न रह जाती है 'बास के पट एक स्त्री का नगा शरीर था, स्त्री बास के सिरे पर टाग फैलाए अटकी हुई थी। दोना टागो पर ताजा खून क्षितिज से झाकते हुए सूर्य की किरणा मे चमक रहा था। बांस उठाकर चलने वाले आदमी के सामने, हाथो मे चेहरा छिपाए चार पाच स्त्रिया धकेली जा रही थी। ये लोग मुस्लिम काफिलो को घृणित गालियो से ललकार रहे थे—ले जाओ, ले जाओ, अपनी माओ, बेटियो को पाकिस्तान ले जाओ। इस प्रकार के दस्यो की जिम्मेदारी अग्रेजों पर तो थी ही, लेकिन काग्रेस और मुस्लिम लीग भी इस जिम्मेदारी से बच नही सकती।

एक ओर पजाब के लोग अपनी जमीन से उखडकर हिन्दुस्तान आए थे, दूसरी ओर हिन्दुस्तान के शरणार्थी कैम्पो मे उनके लिए कोई सुरक्षित व्यवस्था न थी। वहा पर सिर्फ डेढ पाव आटा और छटाक-भर दाल प्रति व्यक्ति, प्रतिदिन के हिसाब से मिलता था। कैम्पो मे लोग अनेक बीमारियो से पीडित थे। आर्थिक समस्याए उनके सामने मुह बाए खडी थी। आर्थिक परेशानिया के कारण न सिर्फ हिन्दू मुसलमान को या मुसलमान हिन्दू को लूट रहे थे। पुरी की रही सही जमा पूजी भी लूट ली जाती है क्योकि लूटने वाला भी अपने देश से लुटकर आया है और यहां पर उसे अपनी बीवी-बच्चो का पेट पालना है। शरणार्थियो की दयनीय स्थिति का फायदा हिन्दू बनियो ने भी उठाने मे सकोच नही किया। छोटे छोटे दुकानदार शरणार्थियो के लिए सरकार से राशन तो लेते थे, लेकिन बाद मे उसका ब्लैक करते थे। इन कार्यों मे उनकी मदद सूद जैसे काग्रेसी नेता कर रहे थे। हिन्दू बनिये कम कीमतो पर शरणार्थियो से सोना खरीदते और बाद मे ऊची कीमतो पर बेच देते। पुरी, सोने की चूडिया बेचना चाहता था, लेकिन कोई भी दुकानदार डेढ सौ रुपये से अधिक देने के लिए तैयार नही था जबकि उनका वास्तविक मूल्य कही अधिक था। ये व्यापारी और साहूकार सूद जी के ही सहयोगी हैं जो विस्थापितो की मजबूरी का फायदा उठाकर उनके दुर्भाग्य का सौदा करते हैं और उनसे बची हुई सम्पत्ति भी छीन लेना चाहते हैं। सरकार द्वारा खोले गए कैम्पो मे शरणार्थियो के लिए खाना, कपडे और रुपयो मे भी ये लोग अपना हिस्सा बाटने आ जाते हैं। इनका उद्देश्य महज अपना हित साधना है। इनम सिर्फ सूद ही नही बल्कि प्रसाद जो हैं, अवस्थी है, मिसेज पत है, अग्रवाल दम्पत्ति है, और ये सब जनता के हिमायती बनकर जनता का शोषण करते हैं। कहने को तो ये लोग गाधीवादी हैं, परन्तु खद्दर सिर्फ बाहरी नैतिकता के कारण ही पहनते हैं। मिसेज अग्रवाल गाधी जी

की प्रार्थना सभाओं में बढ़ चढ़ कर भाग लेती हैं, लेकिन भरी खद्दर की साड़ी उनकी कमर में गूज की तरह चुभती है।

यशपाल ने उपन्यास में पुरी और कनक की कथा को विभाजन के संदर्भ में देखा है। पुरी प्रारम्भ से आदर्शवादी युवक के रूप में उभरकर सामने आता है। 1942 के आन्दोलन में वह जेल भी जा चुका है। वह समाज के तमाम प्रतिगामी मूल्यों का विरोध करता है, लेकिन अन्त में एक समझौतापरस्त और अवसरवादी व्यक्ति बन जाता है। उसके और तारा के व्यक्तित्व में एक बुनियादी अन्तर है और वह यह कि जहां तारा परिस्थितियों के समक्ष कहीं आत्मसमर्पण नहीं करती और यथासम्भव सामाजिक परिवेश का विरोध करती है वहां पुरी कहीं भी परिस्थितियों के विरोध में स्वयं को खड़ा नहीं करता। सिर्फ बेरोजगार होने के कारण वह तारा के विवाह का विरोध नहीं करता और चुपचाप अपनी बहन को उसके भाग्य के सहारे छोड़ देता है। वह कहीं भी समाज की बहशी परम्पराओं के विरोध में खड़ा नहीं होता। विभाजन के बाद वह शरणार्थी कैम्पों में जा पहुंचता है और बेइमान कांग्रेसी नेता सूद जी की कृपा से एक प्रेस का मालिक और एक पत्रिका का सम्पादक बन जाता है। सूद जी, पुरी का प्रयोग अपने बन हित के लिए करते हैं। जिस पुरी ने कम्युनिस्ट विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता के कारण पेशेकार से नौकरी छोड़ दी थी वही पुरी पत्रिका का सम्पादक बनने पर कम्युनिस्टों का विरोध करता है। एम० एल० ए० बनने के बाद जनता की शक्ति को दबाने के लिए पुलिस का सहारा लेता है। उपन्यास में उसका विकास एक रीढ़हीन अवसरवादी व्यक्ति के रूप में हुआ है।

वस्तुतः तारा और पुरी दोनों ही निम्न मध्यवर्गीय परिवार से सम्बन्धित हैं और दोनों ही अपने स्तर पर अपने-अपने तरीके से जीवन में सुख सुविधा हासिल करने की कोशिश करते हैं। तारा यूं तो जीवन में प्रत्येक स्तर पर संघर्ष करती है, परन्तु नौकरी के लिए ब्यूरोक्रेटस—रावत और अग्रवाल—के मन बहलाव का साधन बनती है और अपनी सुख सुविधा के लिए प्रारम्भ से ही अपने आत्मसम्मान को बेचती है।

भारत पाक विभाजन के सामाजिक संदर्भ में एक स्वस्थ परिणाम यह हुआ कि समाज में रूढ़िवादी संस्कार खत्म हो गई। पंजाब के लोगों ने नवीन मूल्यों और नवीन आस्थाओं को अपनाया। विभाजन के बाद यह अवसर देखा गया कि पंजाब के अनेक भागों में गैर जातीय विवाह हुए। भारत में सबसे पहले पंजाब की लड़कियां ही नौकरियों के लिए घर की चहारदीवारी से बाहर निकलीं। विभाजन से प्रभावित स्त्रियों ने स्वावलम्बी बनना चाहा। तारा और कनक आर्थिक रूप में पुरुषों पर निर्भर रहना नहीं चाहतीं कनक नौकरी के

लिए अनेक प्रयत्न करती है। यद्यपि उसका परिवार आर्थिक रूप से मजबूत है फिर भी नौकरी के लिए वह लखनऊ जाती है और अन्त मे, दिल्ली के किसी गांव मे नौकरी करती है।

इस प्रकार यशपाल ने विभाजन की विभीषिका के अनेक आयामो को विविध सदर्भो मे देखा है और विभाजन के दौरान की आगजनी, हत्याकाण्ड, विस्थापितो से भरी गाडियो मे कत्लेआम, स्त्रियो के अपहरण और बलात्कार के केन्द्र मे प्रतिगामी राजनीति के स्वरूप को उदघाटित किया है और स्पष्ट कर दिया है कि यह राजनीति अब ज्यादा दिन नही चल सकती। देश का भविष्य सूद, प्रसाद, अग्रवाल और रावत के हाथ मे नही वरन् देश की जनता के हाथ मे है।

तमस

'झूठा सच' मे यशपाल ने विभाजन से उत्पन्न तत्कालीन परिवेश का विशद चित्रण किया है। इसम 1945 से लेकर 1952 के दौरान व्यक्ति की दहशत का, उन दिनो की उथल पुथल का और तत्कालीन राजनैतिक परिवेश का अकन किया गया है। यशपाल न विभाजन की विभीषिका के तुरन्त बाद 1958 म यह उपन्यास लिखा लेकिन 'तमस' विभाजन के 25 वर्षों बाद सन 1972 म लिखा गया। विभाजन के इतने लम्बे अन्तराल के बाद इस उपन्यास का लिखा जाना यह प्रकट करता है कि लेखक उस विभीषिका को अभी तक भुला नही पाया। विभाजन का पीडा इतन लम्बे समय तक उसे सालती रही और इस पीडा से मुक्ति पाने के लिए वह तत्कालीन परिवेश को निर्भीकता के साथ पाठको के समक्ष प्रस्तुत करता है और चाहता है कि विभीषिका के वे दहशतपूर्ण दिन पुन लौटकर न आयें। लेखक उन दिनो के तमाम सदर्भो को पूर्ण समग्रता के साथ पाठको के समक्ष रखता है। इस प्रक्रिया मे वह, तत्कालीन परिवेश मे व्याप्त अंग्रेजों की कूटनीति का पर्दाफाश करता है। इसके साथ साथ वह उन सामाजिक, आर्थिक कारणो पर भी विचार करता है जिसके तहत विशाल जनसमुदाय को एक स्थान से दूसरे स्थान मे शरणार्थी बनकर जाना पडा। विभाजन से जुडे हुए समस्त सदर्भ, लेखक की विचारधारा के साथ विकसित होते हैं। चाहे स्वामी वानप्रस्थ जी का मजहबी सकीर्णता का प्रश्न हो, चाहे रिचर्ड की कूटनीति का, चाहे हरनाम सिंह द्वारा अपना घर छोडने का प्रसग हो, या भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य सोहन सिंह द्वारा दगो को रोकने का प्रसग हो, सभी का विवेचन भीष्म साहनी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करते हैं और उसमे व्याप्त अन्तर्विरोधी स्थिति को उजागर करते हैं।

'तमस' कुल मिलाकर पांच दिनो की घटनाओ को आधार बनाकर लिखा

गया है। यह पांच दिन विभाजन के तत्काल पहले के कोई भी पांच दिन हो सकते हैं लेकिन इन पांच दिनों में देश में व्याप्त घृणा, विद्वेष, साम्प्रदायिक उन्माद एकाएक उत्पन्न नहीं हो गए, इसके पीछे बहुत पहले से ही विदेशी शक्तियों द्वारा व्यापक स्तर पर साजिश की जा रही थी जिसकी परिणति विभाजन के ठीक पहले के दिनों में हुई।

समस्त घटनाओं का संचालन जिले का डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड करता है जो पर्दे के पीछे है। रिचर्ड के संकेत से ही शहर में दंगे होते हैं, आगजनी, लूट व हत्याएं होती हैं और उसी के संकेत से घटनाओं की समाप्ति होती है। रिचर्ड ब्रिटिश साम्राज्यवाद की उन नीतियों को भारत में क्रियान्वित करता है जो लंदन में तैयार की जाती है। विभाजन के बाद देश में हुए साम्प्रदायिक दंगे अंग्रेजों की कूटनीति का परिणाम था। विश्व इतिहास पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि लगभग प्रत्येक देश में विभिन्न जातियों, विभिन्न वर्गों के लोग रहते आए हैं लेकिन साम्प्रदायिक समस्या सिर्फ उन्हीं देशों में उत्पन्न हुई है जहां पूंजीवादी शासक राज कर रहे थे और जन-आन्दोलनों के खिलाफ अपनी सत्ता को बरकरार रखना चाहते थे। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सौ वर्ष पहले ही इस प्रकार के झगड़े देखने को मिलते हैं।

धार्मिक मतभेद हमारे समाज में पहले भी थे लेकिन अंग्रेजों ने उन मतभेदों को अपने हित के लिए इस्तेमाल किया। भीष्म साहनी ने इस संदर्भ में लिखा है, 'अंग्रेजों ने पहली बार व्यापक स्तर पर इन मतभेदों को, भारतवासियों के खिलाफ एक राजनैतिक अस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया और हमारी विडम्बना इस बात में रही कि हम उनकी कूटनीति को जानते-समझते हुए भी धर्म के नाम पर भड़क उठे, देश के दो टुकड़े होने दिए और परस्पर द्वेष का विष फैलने दिया। धार्मिक मतभेदों को जब बढ़ावा दिया जाता है तो इसके पीछे आर्थिक और सामाजिक मंसूबे काम कर रहे होते हैं।'

रिचर्ड ब्रिटिश सरकार का प्रतिनिधि है, इसलिए दंगों को संचालित करने वाली डोर उसके हाथ में है। मुरादअली के कहने से नत्थू सूअर मारता है और बाद में यही सूअर मस्जिद की सीढ़ियों पर पाया जाता है जिससे शहर में तनाव उत्पन्न होता है। नत्थू को सूअर मारने का आदेश देने के लिए मुरादअली तो सामने आता है लेकिन मुरादअली को निर्देश देने वाला रिचर्ड्स पर्दे के पीछे ही रहता है। शहर में साम्प्रदायिक तनाव बढ़ने से विभिन्न पार्टियों का शिष्ट मण्डल रिचर्ड्स के पास जाता है और उससे आग्रह करता है कि वह डिप्टी कमिश्नर होने के नाते दंगों को रोकने का उपाय करे लेकिन रिचर्ड्स जिसके अधीन फौज, पुलिस व पूरी शासन व्यवस्था है अपनी असमर्थता प्रकट करता है। वह न तो पुलिस की गश्त करवाने पर राजी होता है और न ही शहर के प्रमुख स्थानों पर

फौज की चौकियां बिठाने पर। न तो वह शहर में कर्फ्यू लगवा सकता है और न ही शहर के ऊपर से एक हवाई जहाज उड़वा सकता है। इनमें से कोई भी कदम उठाने पर दंगे खत्म नहीं तो कम जरूर हो सकते थे। वह यहां पर राज करने आया है और वह नहीं चाहता कि हिन्दू और मुसलमान आपस में लड़ने के बजाय संगठित होकर, उसके खिलाफ लड़ने लगें। शहर में हुए फसाद की खबर पाकर वह लीजा से कहता है 'क्या यह अच्छी बात होगी कि लोग मिलकर मेरे खिलाफ लड़ें, मेरा खून करें।' अपनी सुरक्षा के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने 'फूट डालो और शासन करो' की नीति अपनाई थी और उन्होंने इस नीति के सहारे न सिर्फ स्वाधीनता आंदोलन को कमजोर किया बल्कि देश का बटवारा भी इस तरह से किया कि विभाजन के बाद भी दोनों अधिराज्यों का आर्थिक शोषण करते रहें। 'फूट डालो और शासन करो' की नीति को क्रियान्वित करने के लिए अंग्रेजों ने धार्मिक मतभेद, मुसलमानों का आर्थिक पिछड़ापन तथा सामाजिक अन्धविश्वास का सहारा लिया। एक स्थान पर रिचर्ड अपनी पत्नी से कहता है, 'डार्लिंग, हुकूमत करने वाले यह नहीं देखते कि प्रजा में कौन सी समानता पाई जाती है, उनकी दिलचस्पी तो यह देखने में होती है कि वे किन किन बातों में एक दूसरे से अलग-अलग हैं।' यद्यपि वह शहर में हिन्दू मुस्लिम दंगों को सचालित करता है लेकिन ऊपर से तटस्थ बना रहता है। लीजा रिचर्ड स से कहती है, 'देश के नाम पर ये लोग तुम्हारे साथ हैं और धर्म के नाम पर तुम इन्हें आपस में लड़ाते हो।' जब सारा शहर साम्प्रदायिक दंगों की चपेट में आ चुका होता है, सैकड़ों मारे जाते हैं, हजारों बेघर हो जाते हैं, सैकड़ों गांव जल चुके होते हैं। जगह-जगह आगजनी और लूट की घटनाएं हो चुकी होती हैं और जब शासक वर्ग को यह महसूस हो जाता है कि आपस में लड़ते लड़ते लोगों की सारी शक्ति क्षीण हो चुकी है और अब वे जल्दी ही उनके खिलाफ लड़ने का साहस नहीं करेंगे तो शासन-तंत्र सक्रिय हो उठता है। तब शहरों और गांवों में हवाई जहाज उड़ान भरता है, गलियों में पुलिस गश्त करने लगती है, जगह जगह फौजी चौकियां बनाई जाती हैं रिलीफ कैम्प खोले जाते हैं, हवाई जहाज को देखते ही मार-काट खत्म हो जाती है, जिस जिस गांव में हवाई जहाज उड़ता जाता है वहां ढोल बजने बन्द हो जाते हैं, नारे लगने बंद हो जाते हैं, आगजनी और लूटपाट की घटनाएं बन्द हो जाती हैं। कसाई का लड़का जो गुरुद्वारे की खिड़कियों पर तेल छिड़ककर आग लगाने ही वाला होता है, हवाई जहाज को देखकर अपना इरादा बदल देता है। किशन सिंह दिलेर बनकर मुसलमानों के सामने चला जाता है तमाम लोग अपने अपने घर में हुए नुकसान को देखने के लिए वापस जाने लगते हैं। तब जिला कांग्रेस के बख्शी जी के मन में विचार उत्पन्न होता है—फसाद करने वाला भी अंग्रेज, फसाद रोकने

याना भी अंग्रेज, मुगा मारने वाला भी अंग्रेज, घर से बेघर करने वाला भी अंग्रेज और घरों में बसाने वाला भी अंग्रेज। अंग्रेज फिर बाजी ले गए। उपन्यास में प्रारम्भ से अन्त तक घटनाओं का संयोजन रिचड्र्स के हाथ में रहता है। उसी के इशारे से दंगे होते हैं, उसी के इशारे से दंगे समाप्त होते हैं। उपन्यास का रिचड्र्स तत्कालीन पश्चिमी पंजाब के डिप्टी कमिश्नर 'कोट्स' का ही दूसरा रूप है।

विभाजन के दौरान हुए दंगों के मूल में ब्रिटिश प्रशासकों की कूटनीति तो थी ही लेकिन हिन्दूवादी संस्थाओं—आर० एस० एस० व हिन्दू महासभा—ने भी इस जलती हुई आग में घी का काम किया। इन संस्थाओं ने भ्रम की आड़ में खून खराबा किया और तलवार का जवाब तलवार से देने का आह्वान किया। उपन्यास की सबसे बड़ी शक्ति और सफलता इन संस्थाओं के फासिस्ट स्वरूप को उभारने में है। तनाव को कम करने के बजाय इन संस्थाओं ने उसे बढ़ाया। सत्संग की समाप्ति के पश्चात् सभा को विसर्जित हो जाना चाहिए था किन्तु अन्तरंग सभा के सदस्य बैठे रहे क्योंकि एक जरूरी विषय पर विचार विमर्श करना था। इस जरूरी विषय का संकेत स्वामी वानप्रस्थ जी अपने व्याख्यान में करते आए थे।

ये वानप्रस्थ जी हिन्दुओं को सलाह देते हैं कि मुसलमानों के आक्रमण से बचने के लिए सभी सदस्य एक-एक कनस्तर कड़वे तेल का रखें, एक एक बोरी कोयला रखें ताकि उबला हुआ तेल शत्रुओं पर डाला जा सके और जलते अंगार छत पर से फेंके जा सकें। सभा में यह भी निर्णय लिया गया कि युवकों को लाठी चलानी सिखाई जाए। वानप्रस्थ जी की यह सभा मूल रूप से राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की सभा का ही प्रतिरूप है और इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि संघ ने साम्प्रदायिक भावना का प्रचार कर साम्प्रदायिक दंगे बढ़ाने में मदद की। वस्तुतः आर० एस० एस० की स्थापना का मूल कारण ही मुस्लिम विरोध है। हैडगेवार जैसे प्रमुख नेता यही समझते थे कि सिर्फ हिन्दू ही हिन्दू संस्कृति की रक्षा कर सकते हैं और देश को स्वतंत्र करा सकते हैं। जिस समय आर० एस० एस० की स्थापना हुई थी, उस समय यह तय किया गया था कि वयस्क लोगों पर भरोसा नहीं किया जा सकता इसलिए अपनी संस्था में कम उम्रों के नौजवानों को भरती किया जाए। अपनी संस्था में शामिल करने से पूर्व बच्चों की निष्ठा और आज्ञाकारी क्षमता की बखूबी छानबीन की जाती। रणवीर को आय युत्व बनाने से पहले उसकी मानसिक दृढ़ता, कर्मठता का पूरी तरह परिचय लिया जाता है। मास्टर देवव्रत रणवीर को दीक्षा देने से पहले उसकी परीक्षा लेते हैं और उसे एक ही बार मुर्गी की गरदन काटने के लिए कहते हैं। आर० एस० एस० ने स्कूली बच्चों की मानसिकता, सम्प्रदाय के

आधार पर विकसित की। शिवाजी और राणाप्रताप की कहानियों के माध्यम से इन संस्थाओं ने उदारता के स्थान पर मुस्लिम विरोधी भावनाएं पैदा की। और जब रणवीर पूरी तरह दीक्षा पा लेता है तो वह निहायत साम्प्रदायिक हो उठता है। वह और उसके साथी मुसलमानों से युद्ध करने की तैयारी करते हैं, शस्त्रागार बनाते हैं, तमाम हथियार एकत्रित करते हैं, सिर्फ तेल उबालने के लिए कढ़ाई की कमी रह जाती है तो वह इसे हलवाई की दुकान से इस तरह लूट लाते हैं जिस तरह शिवाजी सूरत लूट लाए थे। म्लेच्छों यानी मुसलमानों को हिंदुस्तान से बाहर निकालने का सबक आर० एम० एस० वालों ने फासिस्ट जर्मनी से ही सीखा था। म्लेच्छों के बारे में रणवीर को बताया जाता है कि म्लेच्छ तो गंदे होते हैं, ये नहाते नहीं हैं, पाखाना करके हाथ नहीं धोते, एक-दूसरे का झूठा खा लेते हैं, समय पर शौच नहीं जाते। इसलिए उन्हें हिंदुस्तान में रहने का कोई अधिकार नहीं है। इसी सिद्धान्त को आधार बनाकर रणवीर और उसके साथी म्लेच्छों की हत्या करने पर उतारू रहते हैं और उन्हें शिक्षा भी इसी प्रकार दी जाती है कि वार हमेशा कमर में करो या पेट में या घुमावदार छुरा घोंपने के बाद उसे अन्दर ही-अन्दर थोड़ा मोड़ दो जिससे अंतड़ियां बाहर आ जाएगी। और इसी तरीके से रणवीर बूढ़े इत्रफरोश की हत्या करता है।

यदि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और हिंदू महासभा जैसी संस्थाएं ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ मिलकर साम्प्रदायिक दंगों को बढ़ाने में मदद कर रही थी तो भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य इन दंगों को रोकने की जी-तोड़ कोशिश कर रहे थे। सोहनसिंह और मीरदाद जैसे लोग दंगों के दौरान लोगों को यह समझाने की कोशिश करते हैं कि अंग्रेज हिंदुओं और मुसलमानों को आपस में लड़ाकर अपना उल्लू सीधा करने की कोशिश कर रहे हैं। देवदत्त, मीरदाद और सोहनसिंह जैसे तीनों सदस्य लेखक के मार्क्सवादी दृष्टिकोण से साम्प्रदायिक समस्या का मूल्यांकन करते हैं और लोगों में वास्तविकता की सही समझ विकसित कर समस्या को सुलझाने की कोशिश करते हैं। ये लोग समझते हैं कि यह लड़ाई शोषक और शोषितों की नहीं है बल्कि धर्म के आधार पर बंटे हुए सभी शोषितों की आपसी लड़ाई है। इसके बावजूद भी ये लोग साम्प्रदायिक दंगों को रोकने के लिए जो प्रयत्न करते हैं उसमें असफल रहते हैं। इससे पार्टी के सदस्यों की आस्थाएं तो टूटती ही हैं साथ में यह विश्वास भी खण्डित होता है कि मजदूर आपस में नहीं लड़ सकते।

'तमस' सिर्फ साम्प्रदायिक दंगों तक ही सीमित नहीं रहता वरन् विभाजन के सबसे ज्वलन्त प्रश्नों को भी पाठकों के समक्ष रखता है। विभाजन की सबसे बड़ी विडम्बना यह रही कि जनता को उनकी इच्छा के विरुद्ध अपना भरा-पूरा

घर-बार छोडकर भागना पडा और अनजानी और अनचाही जगह मे जाकर शरण लेनी पडी। हरनामसिंह की कथा के माध्यम से लेखक ऐसे तमाम लोगों के प्रति सहानुभूति प्रकट करता है जिन्हे एकाएक अपना घर छोडकर शरणार्थी बन जाना पडा। विभाजन की इस अमानवीय त्रासदी से दोनो देश के आर्थिक ढाचे को भारी नुकसान उठाना पडा। यद्यपि भीष्म साहनी ने दोनो देश के चरमराते हुए ढाचे का जिक्र नही किया लेकिन शरणार्थियो की समस्याओ को, उनकी सवेदनाओ को रेखाकित किया है। लेखक ने उन सन्दर्भों का भी जिक्र किया जिसके कारण व्यक्ति को अपना घर बार छोडकर भागना पडा।

इस सन्दर्भ म एक बात विशेष रूप मे देखी गई कि मोहल्ले वालो ने अपने मोहल्ले के लोगो की—चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान—रक्षा की। उन्होने अपनी मोहल्लेदारी निभाई और उन्हें या तो यह चेतावनी दी कि उनका जीवन यहा सुरक्षित नही है और वे यहा से चले जायें या उनकी सुरक्षा के प्रबध किए। हरनामसिंह को करीम खान, आसन्न सकट स आगाह करता है और वह भरी हुई दुकान छोड़कर थोडी सी पूजी लेकर अपनी पत्नी के साथ निकल पडता है। लेखक ने इस तथ्य की ओर भी सकेत किया है कि हरनामसिंह को मारने के मूल मे साम्प्रदायिक कम बरन आर्थिक कारण अधिक थे। यदि वास्तव मे बलवाई हरनामसिंह को मारना चाहते तो वे पहले हरनामसिंह को खोजते और बाद मे उसकी दुकान को लूटते, लेकिन नही, उन्होंने हरनामसिंह को छोडकर उसकी दुकान को लूटना ही श्रेयस्कर समझा। वस्तुत आर्थिक कारणो की वजह से ही बलवाइयो ने लोगो की हत्याए की, उन्हे अपना घर छोडने के लिए बाध्य किया। पश्चिमी पजाब मे मुसलमानो की अपेक्षा हिन्दू-सिख अधिक सम्पन्न थे। हिन्दू सिख उद्योग व्यापार और खेती का काम करते थे, जबकि मुसलमान अधिकाश कुशल कारीगर थे और फौज म भरती होते थे। अपन पिछडेपन के कारण और हिन्दुओ की प्रगति के कारण मुसलमानों ने हिन्दू सिखा पर अधिक उग्र रूप से आक्रमण किए। यह आक्रमण इस हद तक बढ़ गए थे कि इन्होंने छोटे-मोटे युद्ध का रूप ले लिया था। गुरुद्वारे म सारा सिख सगत का धर्म की रक्षा के लिए एकत्रित होना और मुसलमानो के मोहल्ले म तमाम मुसलमानों का एक स्थान पर इकट्ठा होना इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि साम्प्रदायिक तनाव दूर दराज के गांवों मे भी फैल चुका था। दोनों सम्प्रदाय के लोग अपने धर्म की रक्षा के लिए स्वय को अतीत म महसूस कर रहे थे, तथा अपने जेहन म रणजीतसिंह को ढूढ रहे थे। उनकी चेतना म बलिदान की भावना हिलोरें ले रही थी। वे मानो मध्ययुग म पहुच चुके थे। जहां व्यक्ति सिर्फ धर्म की खातिर जीता है और धर्म की खातिर मरता है।

उपन्यास के अन्त में, लगभग फिर स, गांव से शहर की ओर मोडता है और

साम्प्रदायिक दंगों में हुए नुकसान का जायजा लेने की कोशिश करता है। वह छोटे छोटे प्रसंगों के माध्यम से विभाजन से पीड़ित व्यक्तियों की मन स्थिति को सामने लाने की कोशिश करता है। कोई अपनी खोई हुई बेटी का पता लगाना चाहता है तो कोई वापस अपने गांव आना चाहता है जिससे वह अपना गड़ा हुआ सोना ला सके। अन्त में, लेखक साम्प्रदायिक समस्याओं को खोजने की कोशिश करता है, मुस्लिम लीग और कांग्रेस पार्टी को मिलाकर। अमन कायम करने के लिए जो बस शहर का दौरा करने वाली है उस पर लीग और कांग्रेस के झंडे साथ साथ लगे हैं। लेकिन लेखक के लिए समस्या का समाधान प्रस्तुत करना महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण है साम्प्रदायिक दंगों के तीव्रतम स्वरूप को हमारे समक्ष रखना। साथ ही लेखक यह भी संकेत कर देता है कि जो तत्त्व साम्प्रदायिक दंगों को प्रारम्भ करवाते हैं, वही तत्त्व अमन कायम करने में पहल करते हैं। अमन स्थापित करने के लिए रवाना होने वाली बस में पहले से बैठा हुआ कोई व्यक्ति—हिंदू मुस्लिम एक हो, हिंदू मुस्लिम इत्तहाद जिंदाबाद, अमन कमेटी जिंदाबाद के नारे लगाता है। यह नारे लगाने वाला कौन है? लेखक इसके बारे में स्पष्ट कर देता है, 'लोगों ने झांककर बस के अन्दर देखा। कौन आदमी था जो पहले से ही बैठकर आया था और लाउडस्पीकर पर नारे लगा रहा था। ड्राइवर की सीट के साथ वाली सीट पर एक आदमी हाथ में माइक्रोफोन पकड़े बैठा था। बहुत लोगों ने उसे नहीं पहचाना। कुछेक ने पहचान लिया। नत्थू मर चुका था वरना वह मौजूद होता तो पहचानने में देर न लगती। मुराद अली था। काले-काले चेहरे और कटीली मूछों वाला मुराद अली जिसकी पतली सी छड़ी टांगों के बीच पड़ी थी और छोटी छोटी आंखें से दाएं बाएं देखे जा रहा था और लाउडस्पीकर में से नारे गूंज रहे थे।' यानी वही मुराद अली जिसके कहने से नत्थू ने सूअर मारा था, वही मुरादअली अमन कायम करने के लिए पहल करता है।

कुल मिलाकर यह उपन्यास विभाजन से उत्पन्न तमाम संदर्भों को, मन-स्थितियों को, संवेदनाओं को, अपनी पूर्ण पहचान के साथ सामने रखता है। 'झूठा सच' के बाद विभाजन का जितना प्रामाणिक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है उतना अन्य किसी कृति में नहीं हो सका है। इसका कारण है कि भीष्म साहनी स्वयं विभाजन की यंत्रणा से गुजरकर निकले हैं और इसीलिए उनके अनुभव इस उपन्यास को महत्त्वपूर्ण बनाते हैं।

आधा गांव

आधा गांव मूल रूप से 'आंचलिक' उपन्यास है। इस आंचलिक उपन्यास में लेखक, अंचल विशेष पर पड़े विभाजन के प्रभावों का मूल्यांकन करता है। विभाजन की यंत्रणा प्रत्यक्ष रूप से उन गांवों और उन शहरों के निवासियों को

भोगनी पड़ी जहाँ पर आबादी की अदला बदली हुई। गंगोली में आबादी की फेर-बदल नहीं हुई इसलिए वहाँ के मुसलमान अप्रत्यक्ष रूप से विभाजन के शिकार हुए। गंगोली गाजीपुर शहर से 12 मील की दूरी पर स्थित है, गाजीपुर में भी विभाजन से उत्पन्न समस्याएँ विकराल रूप में सामने नहीं आ पाईं, इसलिए दूर गंगोली में रहने वाले मुसलमान, पाकिस्तान के बारे में, जिन्ना के बारे में, कलकत्ते में हुए साम्प्रदायिक दंगों और मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग के बारे में केवल सुनते थे लेकिन पाकिस्तान क्यों बन रहा है, कहाँ बन रहा है, कैसे बन रहा है, इन तथ्यों से परिचित नहीं थे। वे तो बस अपनी गंगोली को जानते थे जो बाप-दादाओं के जमाने से उन्हीं की है।

आधा गाँव में लेखक ने, शिया मुसलमानों के दस परिवारों की कथा कही है और यह कथा 1937 से लेकर 1952 तक चलती है। इस साल की प्रमुख घटनाओं — 1937 में प्रान्तीय विधानसभा के चुनाव, भारत छोड़ो आन्दोलन, मुसलमानों के डायरेक्ट एक्शन डे, देश का विभाजन, साम्प्रदायिक दंगे, हिंसक वातावरण, नये संविधान की स्थापना और जमींदारी प्रथा की समाप्ति — के परिप्रेक्ष्य में गंगोली के शिया मुसलमानों की कथा कही है।

लेखक ने इस उपन्यास में विभाजन की राजनीति का विरोध किया है कि गंगोली का कोई भी मुसलमान न तो पाकिस्तान के पक्ष में है और न ही गंगोली छोड़कर पाकिस्तान जाना चाहता है। पाकिस्तान की राजनीति को राही मासूम रजा ने अलीगढ़ के विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत किया है। ये विद्यार्थी लीग की राजनीति का प्रचार करते हैं और गाँव के निरीह मुसलमानों के जेहन में यह बिठाने की कोशिश करते हैं कि यदि पाकिस्तान न बना तो सारे मुसलमानों को हिन्दुओं की कृपा के अधीन रहना पड़ेगा इसलिए मुस्लिम लीग को वोट देना उनका मजहबी फर्ज है। लेकिन गाँव के किसी भी मुसलमान को पाकिस्तान की राजनीति समझ में नहीं आती और जो लोग इसे समझते, वे इसे गलत और अनुचित बताते। फुन्नन मियाँ मानते हैं कि पाकिस्तान आकिस्तान पेट भरन के खेल हैं। लेखक ने उपन्यास के अनेक पात्रों के माध्यम से पाकिस्तान का विरोध करवाया है। तन्नू—जो दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान सेना में था—पाकिस्तान का विरोध करता है क्योंकि उसने युद्ध के दौरान होने वाले नरसंहार को अपनी आँखों से देखा है और वह नहीं चाहता कि वही नरसंहार पुनः दोहराया जाय। उसके अनुसार, 'पाकिस्तान की माँग का कोई औचित्य नहीं है। यह माँग सिर्फ हिन्दुओं के प्रति नफरत और आशंका के कारण की जा रही है। वह मानता है कि नफरत और खौफ की बुनियाद पर बनने वाली कोई भी चीज मुबारक नहीं हो सकती।' पाकिस्तान का समर्थन करने वाले लोग फुन्नन मियाँ को यह समझाने की कोशिश करते हैं कि वे लोग मुस्लिम यूनिवर्सिटी को पाकिस्तान

मुस्लिम सत्ता राजकाज चला रही थी, तब तक मुसलमानों का अल्पसंख्यक होने का बोध न हुआ। अंग्रेजों द्वारा मुसलमानों को विशेष सुविधाएं दिए जाने के कारण भी वे इस तथ्य से परिचित न हो सके। लेकिन ज्यों ज्यों राष्ट्रीय आन्दोलन में तीव्रता आती गई, त्यों त्यों उनके मन में अल्पसंख्यक होने का भान बढ़ता गया।

इसके साथ-साथ लेखक पाकिस्तान के कारण सामाजिक सम्बन्धों में आये बदलाव को भी रेखांकित करता है। उसने स्पष्ट कर दिया है कि पाकिस्तान से न सिर्फ हिन्दू और मुसलमानों के सम्बन्धों में बदलाव आया बल्कि जीवन के तमाम सदर्भों में भी परिवर्तन हुआ। हकीम साहब को महसूस होता है कि 'ई' पाकिस्तान तो हिन्दू मुसलमान को अलग करे को बना रहा। बाकी हम त ई देख रह कि ई मियां बीबी, बाप बेटा और भाई-बहन का अलग कर रहा है।' लेखक यह भी मानता है कि पाकिस्तान बनने से पहले लोग कलकत्ता जाते थे, बम्बई और ढाका जाते थे, परन्तु मोहरम के अवसर पर अवश्य आते थे लेकिन पाकिस्तान से कोई वापस नहीं आता था तो पाकिस्तान क्या मृत्यु देश है? यह प्रश्नवाचक चिह्न लिया मुसलमानों की मानसिकता को बखूबी उभारता है। प्रथम अध्याय में लेखक कहता है कि यह कहानी सच पूछिए तो उन गुब्बारों की है या शायद उन बच्चों की है जो अपने गुब्बारों की तलाश कर रहे हैं और जिन्हें यह नहीं मालूम कि डोर टूट जाने से गुब्बारों का अजाम क्या होगा? इसीलिए गंगाली के मुसलमान अपने बच्चों को पाकिस्तान जाते देखकर दुखी हैं और इसलिए उपन्यास के अंत में हकीम साहब पाकिस्तान जाने वालों का लानत भेजते हैं, 'ए रुदन, तू हम छोड़ दियो, हम कह रहें कि छोड़ दियो तू अपने बाप को छोड़ दिया तो का हमहू अपने बाप को छोड़ दें? वास्तव यह स्थिति लगभग प्रत्येक भारतीय मुसलमान परिवार को भोगनी पड़ी जो अपनी जमीन जायदाद के कारण पाकिस्तान नहीं गए लेकिन अपने बेटों का पाकिस्तान जाते देखकर दुखी हुए।

उपन्यास में पाकिस्तान के पक्ष में वही लोग दिखाई देते हैं जो सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं और समझते हैं कि पाकिस्तान बनने से उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हो जाएगी। गांव के जुलाहे सुन्नी मुसलमान पाकिस्तान के पक्ष में हैं। इसके विपरीत वे लोग जो जमींदार हैं, आर्थिक रूप से मजबूत हैं। वे पाकिस्तान नहीं जाना चाहते क्योंकि पाकिस्तान में वे जमींदार नहीं कहलवाते पर जब जमींदारी ही खत्म हो गई तो इन लोगों के आर्थिक आधारों की बुनियादें ही हिल गई। ऐसी स्थिति में ध्वस्त होते हुए परिवारों की बड़ी बूढ़ियों ने गिड़गिड़ाकर दुआएं मांगी कि अंग्रेज लौट आए। हर नमाज में कांग्रेस को बद-दुआएं दी गईं। 'अरे ई कांग्रेस माटीमिली, इह के कोढ़ हो जाए। इह की मिट्टी

खराब हो लेकिन न दुआए कबूल हुईं न बददुआए।' सदियो से रहने-बसने और जीने वाले मिया लोगो ने देखा कि जिस गाव को वे अपना कहते और समझते आए थे उस गाव से उनका कोई रिश्ता नही रह गया था। अपनी ध्वस्त होती हुई आबरू को बचाने के लिए कराची गए। गगोली मे उन्हें सब जानते थे इसलिए वे वहां पान की दुकान नही खोल सकते थे, लेकिन कराची मे उन्हें कौन जानता था इसलिए, वे वहा कोई भी काम करने मे नही झिझके।

पाकिस्तान की माग को लेकर तथा कांग्रेस और लीग के बढते हुए विरोध के कारण साम्प्रदायिक दगे हुए। ये दगे गगोली से दूर, दिल्ली, कलकत्ता या अन्य शहरो मे हुए, पर गगोली वाले इन दगो के बारे मे सुनते हैं और आक्रोश मे आते हैं। राही ने स्पष्ट कर दिया कि इन दगो का स्वरूप धार्मिक नही था। हिन्दू और मुसलमान के बीच होने वाले झगडे साम्प्रदायिक झगडे नही थे बल्कि ये फौजदारी के झगडे थे। राही स्वय साम्प्रदायिकता के कारणो के बारे मे कहते हैं, 'यह साम्प्रदायिकता हमारी पिछडी हुई आर्थिक स्थितियो की देन है इसलिए उसे हिन्दू या मुसलमान मे बाटना गलत है। हिन्दू साम्प्रदायिकता या मुस्लिम साम्प्रदायिकता कहकर हम कुल मिलाकर साम्प्रदायिकता को बढावा ही देते है। जरूरत, साम्प्रदायिकता से लडने की है और यह लडाई हिन्दू या मुसलमान म बाटकर नही लडी जा सकती। समझना यह भी जरूरी है कि साम्प्रदायिकता जीवन मे आर्थिक असुरक्षा की दन है।

जिन शिया परिवारो की कहानी लेखक इस उपन्यास मे कहता है उन परिवारो की स्थिति पाकिस्तान बनने से बहुत शोचनीय हो गई थी। न तो वे अपनी जमीन जायदाद को छोडकर पाकिस्तान जा सके और न ही समय की आवश्यकता के अनुसार स्वय का ढाल सके। शिया मुसलमान होने के कारण भारत मे रह गए और मुसलमानो की नजर मे वे सदिग्ध हो गए। बाद मे जमीदारी प्रथा के उन्मूलन से उनकी स्थिति अत्यधिक दयनीय हो गई। उनके जीवन का एकमात्र आधार जमीदारी थी और जमीदारी खत्म हो जाने से वे अपने ही घर पर निराश्रम हो गए। गगोली मे 10 शिया परिवारो की जमीदारी खत्म हो गई, अनेक लोग पाकिस्तान छोडकर चले गए, बुजुर्ग मर गए लेकिन लेखक हताश नही है। वह बीत हुए समय पर आसू नही बहाना चाहता, वह भविष्य के प्रति आस्थावान है। विभाजन के कारण और जमीदारी उन्मूलन के कारण एक तरफ लेखक जीवन मूल्यो मे आई निरथकता और खोखलेपन को रेखांकित करता है और दूसरी तरफ आने वाले भविष्य के सपने भी सजोता है। उपन्यास के अत मे लेखक दिखाता है कि एक छोटा-सा बच्चा, बस्ता बगल मे दबाए, भागता हुआ स्कूल जा रहा है, वह गिरता है लेकिन फिर उठकर भागने लगता है इसके माध्यम से लेखक कहना यह चाहता है कि 'शिक्षा' ही दश की प्रतिक्रिया

मुस्लिम सत्ता राजकाज चला रही थी, तब तक मुसलमानों को अल्पसंख्यक होने का बोध न हुआ। अंग्रेजों द्वारा मुसलमानों को विशेष सुविधाएं दिए जाने के कारण भी वे इस तथ्य से परिचित न हो सके। लेकिन ज्यों ज्यों राष्ट्रीय आन्दोलन में तीव्रता आती गई, त्यों त्यों उनके मन में अल्पसंख्यक होने का ज्ञान बढ़ता गया।

इसके साथ साथ लेखक पाकिस्तान के कारण सामाजिक सम्बन्धों में आये बदलाव को भी रेखांकित करता है। उसने स्पष्ट कर दिया है कि पाकिस्तान से न सिर्फ हिन्दू और मुसलमानों के सम्बन्धों में बदलाव आया बल्कि जीवन के तमाम सदर्भों में भी परिवर्तन हुआ। हकीम साहब को महसूस होता है कि 'ई पाकिस्तान तो हिन्दू मुसलमान को अलग करे का बना रहा। बाकी हम त ई देख रहे कि ई मियां-बीवी, बाप बेटा और भाई-बहन का अलग कर रहा है। लेखक यह भी मानता है कि पाकिस्तान बनने से पहले लोग कलकत्ता जाते थे, बम्बई और ढाका जाते थे, परन्तु मोहर्रम के अवसर पर अवश्य आते थे लेकिन पाकिस्तान से कोई वापस नहीं आता था तो पाकिस्तान क्या मृत्यु देश है? यह प्रश्नवाचक चिह्न शिया मुसलमानों की मानसिकता को बखूबी उभारता है। प्रथम अध्याय में लेखक कहता है कि यह कहानी सच पूछिए तो उन गुब्बारों की है या शायद उन बच्चों की है जो अपने गुब्बारों की तलाश कर रहे हैं और जिन्हें यह नहीं मालूम कि डोर टूट जाने से गुब्बारों का अंजाम क्या होगा? इसीलिए बंगाली के मुसलमान अपने बच्चों को पाकिस्तान जाते देखकर दुखी हैं और इसलिए उपन्यास के अंत में हकीम साहब पाकिस्तान जाने वालों को लानत भेजते हैं, 'ए रहन, तू हम छोड दिया, हम कह रहे कि छोड दियो तू अपने बाप को छोड दियो तो का हमहू अपन बाप को छोड दें? लानतुल्ला' यह स्थिति लगभग प्रत्येक भारतीय मुसलमान परिवार को भोगनी पडी जो अपनी जमीन-जायदाद के कारण पाकिस्तान नहीं गए लेकिन अपने बेटों का पाकिस्तान जाते देखकर दुखी हुए।

उपन्यास में पाकिस्तान के पक्ष में वही लोग दिखाई देते हैं जो सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं और समझते हैं कि पाकिस्तान बनने से उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हो जाएगी। गाव के जुलाहे, सुन्नी मुसलमान पाकिस्तान के पक्ष में हैं। इसके विपरीत वे लोग जो जमींदार हैं, आर्थिक रूप से मजबूत हैं। वे पाकिस्तान नहीं जाना चाहते क्योंकि पाकिस्तान में वे जमींदार नहीं कहलवाते पर जब जमींदारी ही खत्म हो गई तो इन लोगों के आर्थिक आधारों की बुनियादें ही हिल गइं। ऐसी स्थिति में ध्वस्त होते हुए परिवारों की बड़ी बूढ़ियों ने गिडगिडाकर दुआएं मांगी कि अंग्रेज लौट आए। हर नमाज में कांग्रेस को बद-दुआएं दी गइं। 'अरे ई कांग्रेस माटीमिली, इह का कोढ हो जाए। इह की मिट्टी

खराब हो   लेकिन न दुआए कबूल हुईं न बददुआए।' सदियो से रहने-बसने और जीने वाले मिया लोगो ने देखा कि जिस गाव को वे अपना कहते और समझते आए थे उस गाव से उनका कोई रिश्ता नही रह गया था। अपनी ध्वस्त होती हुई आबरू को बचाने के लिए कराची गए। गगोली मे उन्हें सब जानते थे इसलिए वे वहा पान की दुकान नही खोल सकते थे, लेकिन कराची मे उन्हें कौन जानता था इसलिए, वे वहा कोई भी काम करने मे नही झिझके।

पाकिस्तान की माग को लेकर तथा काग्रेस और लीग के बढते हुए विरोध के कारण साम्प्रदायिक दगे हुए। ये दगे गगोली से दूर, दिल्ली, कलकत्ता या अन्य शहरो मे हुए, पर गगोली वाले इन दगो के बारे मे सुनते हैं और आक्रोश मे आते हैं। राही ने स्पष्ट कर दिया कि इन दगो का स्वरूप धार्मिक नही था। हिन्दू और मुसलमान के बीच होने वाले झगडे साम्प्रदायिक झगडे नही थे बल्कि ये फौजदारी के झगडे थे। राही स्वय साम्प्रदायिकता के कारणो के बारे मे कहते हैं, 'यह साम्प्रदायिकता हमारी पिछडी हुई आर्थिक स्थितियो की देन है इसलिए उसे हिन्दू या मुसलमान मे बाटना गलत है। हिन्दू साम्प्रदायिकता या मुस्लिम साम्प्रदायिकता सहकर हम कुल मिलाकर साम्प्रदायिकता को बढावा ही देते हैं। जरूरत, साम्प्रदायिकता से लडने की है और यह लडाई हिन्दू या मुसलमान मे बाटकर नही लडी जा सकती। समझना यह भी जरूरी है कि साम्प्रदायिकता जीवन म आर्थिक असुरक्षा की दन है।

जिन शिया परिवारो की कहानी लेखक इस उपन्यास मे कहता है उन परिवारो की स्थिति पाकिस्तान बनने से बहुत दयनीय हो गई थी। न तो वे अपनी जमीन जायदाद को छोडकर पाकिस्तान जा सके और न ही समय की आवश्यकता के अनुसार स्वय को ढाल सके। शिया मुसलमान होने के कारण भारत मे रह गए और मुसलमानो की नजर मे वे सदिग्ध हो गए। बाद मे जमीदारी प्रथा क उन्मूलन से उनकी स्थिति अत्यधिक दयनीय हो गई। उनके जीवन का एकमात्र आधार जमीदारी थी और जमीदारी खत्म हो जाने से वे अपने ही घर पर निराश्रय हो गए। गगोली मे 10 शिया परिवारो की जमीदारी खत्म हा गई, अनेक लोग पाकिस्तान छाडकर चले गए, बुजुग मर गए लेकिन लेखक हताश नही है। वह बीते हुए समय पर आंसू नही बहाना चाहता, वह भविष्य के प्रति आस्थावान है। विभाजन के कारण और जमीदारी उन्मूलन के कारण एक तरफ लेखक जीवन मूल्या मे आई निरथकता और खोखलेपन को रखांकित करता है और दूसरी तरफ आने वाले भविष्य के सपने भी सजोता है। उपन्यास के अत मे लेखक दिखाता है कि एक छोटा-सा बच्चा, बस्ता बगल मे दबाए, भागता हुआ स्कूल जा रहा है, वह गिरता है लेकिन फिर उठकर भागन लगता है। इसके माध्यम से लेखक कहना यह चाहता है कि 'शिक्षा' ही देश की प्रतिक्रिया-

वादी राजनीति द्वारा फैलाए अवसाद को दूर कर सकती है और समाज में परिवर्तन ला सकती है और यह परिवर्तन आने वाली पीढी लाएगी जो स्कूल जाते समय रास्ते में गिर तो पड़ती है, लेकिन अपने लक्ष्य से डगमगाती नहीं।

एक पखुडी की तेज धार

शमशेरसिंह नरूला का उपन्यास 'एक पखुडी की तेज धार' विभाजन के फलस्वरूप विकसित सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धो को और साम्प्रदायिक दगा के मूल मे काम कर रही राजनीति को सामने लाता है। उपन्यास शरणार्थियो की समस्या से प्रारम्भ होकर गाधी जी की हत्या तक जाकर समाप्त हो जाता है। इस दौरान हुई साम्प्रदायिक हिंसा का लेखक वज्ञानिक दृष्टिकोण से देखता है और उन शक्तियो के चरित्र को सामने लाता है जो अपने निजी स्वार्थ के लिए साम्प्रदायिक दगे करवाती है। लेखक उन विदेशी शक्तियो के चरित्र को भी उद्घाटित करता है जो अपने निजी स्वार्थ के लिए दगे करवाती है और देशी शक्तियो के साथ मिलकर नेहरू सरकार को उलटने का षडयत्र करती है। उपन्यास के प्रमुख पात्र शिवशकर कोहली को अन्त मे महसूस होता है कि कोई बहुत बडी साजिश इसके पीछे काम कर रही है।

विभाजन के फलस्वरूप दोनो देशो की सरकारो को, शरणार्थी समस्या का सामना प्रमुख रूप मे करना पडा। करोडो लोगो के लिए आजीविका और आवास की व्यवस्था करना एक जटिल काय था। दोनो देशो की सरकारो ने इस दिशा की ओर जो भी प्रयत्न किए वे सन्तोषजनक और पर्याप्त नही थे। कैम्पो मे शरणार्थियो की हालत अत्यधिक दयनीय थी। पाकिस्तान से हिन्दुस्तान आने वाले शरणार्थियो का क्षोभ और व्यथा पाकिस्तान जाने वाले शरणार्थियो की अपेक्षा अधिक तीव्र था, क्योकि पाकिस्तान जाने वाले शरणार्थी अपने यहा से एक अच्छे इलाके मे पहुचे थे जबकि हिन्दुस्तान आने वाले शरणार्थी एक अच्छे इलाके से काफी खराब और गरीब इलाके मे आए थे। इसलिए इनकी मानसिक यत्रणा अधिक जटिल थी। नरूला ने अपने उपन्यास मे इन शरणार्थियो की दयनीय हालत का व्यापक चित्रण किया है। कैम्पो की दशा इतनी बेकार थी कि लोगो को अपना जीवन हमेशा असुरक्षित महसूस होता है। देश के नेताओ ने आजादी के लिए आबादी की अदला बदली तो स्वीकार कर ली थी, परन्तु विस्थापित जनता के भविष्य की ओर कोई ध्यान नही दिया गया। जिसके फलस्वरूप उनकी आस्था पर प्रश्नचिह्न लग गया था। वे सोचने लगे थे कि क्या वे फुटपाथो पर ही अपना जीवन व्यतीत करेंगे, क्या उनकी बेटियाँ फुटपाथो पर ही डोलियाँ चढेंगी। जीवन के प्रति इस दृष्टिकोण के कारण ही उनमे गहरी निराशा उत्पन्न हो चुकी थी और इस निराशा का हल या तो अपने भाग्य म

तलाशते या फिर ईश्वर की इच्छा मे । उनके पास जो कुछ भी जमा पूंजी थी वह पाकिस्तान मे छूट गई थी । स्वतन्त्र भारत मे वे कगाल होकर लौटे थे ।

हिंदू अपनी दुरावस्था का जिम्मेदार मुसलमानो को ठहराते थे और लाहौर मे अपने सम्बन्धी की हत्या का बदला, अमृतसर मे मुसलमानो को मारकर लेते थे। दोनो सम्प्रदाय के लोगो ने रेलगाडियो पर सामूहिक रूप से आक्रमण किए जो कि विभाजन का सबसे दुखदायी पहलू था । इन हत्याओ के चित्र लेखक ने अनेक स्थानो पर प्रस्तुत किए हैं ।

साम्प्रदायिक तनाव को तीव्र करने की जिम्मेदारी आर० एस० एस० और हिंदू महासभा पर थी । इन सस्थाओ ने हिंदुओ को राष्ट्रवाद के नाम से भडकाया । लेखक ने उपन्यास मे इन सस्थाओ के फासिस्ट चरित्र को सामने रखा और स्पष्ट कर दिया कि इन सस्थाओ की वजह से ही साम्प्रदायिक उत्तेजना बढी । कैम्पों मे इन सस्थाओ ने अफवाह फैलायी कि 'मुसलमानो ने जामा मस्जिद के पास एक हिंदू की पीठ मे छुरा भोक दिया है । पुलबगश म मुसलमानो ने एक हिंदू लडकी को छिपा रखा है जिसे पाकिस्तान भिजवाने की कोशिश मे हैं और पुलिस उस लडकी का पता लगाने मे मदद नही कर पा रही है । फाटक हब्श खा मे मुसलमानो ने बम इकट्ठे कर रखे हैं और उन्होंने शहर को तहस-नहस कर देने की धमकी दी है। नेहरू चाहते हैं कि मुसलमानो को आत्मरक्षा के लिए अधिकार दिए जाए लेकिन सरदार पटेल नही मानते । इस प्रकार की अफवाहो को समाचार-पत्रो मे प्रकाशित कर साम्प्रदायिक उत्तेजना को फैलाने मे मदद की गई । नेहरू सरकार का विरोध करना और मुसलमानो के प्रति घृणा फैलाना इन अखबारो की मूल नीति थी । 'देशभक्त' मे नौकरी पाते ही चमनलाल को यह महसूस हो जाता है कि अखबार मे नौकरी बनाए रखने के लिए यह जरूरी है कि समाचारो को इस तरह पेश किया जाए कि वे लोगो को मुसलमानो के विरुद्ध उकसाए और उनकी नजरो मे काग्रेसी नेताओ के वक्तव्यों को तोड मरोड कर पेश किया जाता व सामान्य घटनाओ को साम्प्रदायिक रग दिया जाता । गाडियों मे कत्लआम की जिम्मेदारी मुसलमानो के सिर मढी जाती और साथ मे यह भी जोड दिया जाता कि मुसलमानो ने काफी सख्या मे हथियार एकत्रित कर रखे हैं । काग्रेस विरोध और मुसलमानो के अत्याचारो को बढा-चढा कर प्रस्तुत करने मे इन सस्थाओ के अखबार एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने लगे थे । यदि एक अखबार हिंदू की सामान्य मौत को साम्प्रदायिक रग देकर छापता तो दूसरा अखबार अपनी बिक्री बढाने के लिए हिंदुओ को आगाह करता कि मुसलमान, पाकिस्तान की सीमा दिल्ली तक लाने का षड्यत्र कर रहे हैं । 'देशभक्त' अखबार तो अपनी आवश्यकतानुसार साम्प्रदायिक खबरें गढ भी लिया करता था । विद्वेष को बढाने के लिए एक व्यक्ति दो अलग-अलग नामो

से अखबार निकालता था और एक शेर खालसा, जो अपने आपको सिखों का प्रतिनिधि कहता था और दूसरा बजरंग बली जो हिन्दुओं को सिखों के विरुद्ध उत्तेजित करता था।' इन तमाम अफवाहों के कारण शरणार्थियों की मानसिक चेतना पर विषैला असर हुआ और 'मुसलमानों को पाकिस्तान मार भगाओ' की आवाजें शरणार्थी कैम्पों से आने लगीं।

नेहरू सरकार का तख्ता पलटने के लिए इन संस्थाओं ने विदेशी शक्तियों की सहायता ली और इसके लिए शिवशंकर कोहली जैसे पात्रों को चुना गया। जो झूठ और फरेब का सहारा लेकर राजनीति में प्रवेश करता है और 'आल इण्डिया रिफ्यूजी वेलफेयर एसोसिएशन' बनाता है। इस एसोसिएशन के माध्यम से ये संस्थाएं गांधी जी का विरोध करवाती हैं और इसके लिए अपार धन खर्च करती हैं। नेहरू सरकार का विरोध करने के लिए ये शक्तियां एक ओर जन-प्रदर्शनों का सहारा लेती हैं और दूसरी ओर ज्योतिषियों द्वारा यह कहलवाने की भी कोशिश करती हैं कि नेहरू सरकार का पतन शीघ्र हो जाएगा। ये शक्तियां कोहली को एक ऐसा ज्योतिषी खोज लाने के लिए अपार धन देती हैं जो यह कह सके कि 'तीसरा विश्व युद्ध 1948 में रूस के द्वारा शुरू होकर उस वर्ष अमरीका की जीत से समाप्त हो जाएगा। इसके अलावा ज्योतिषी यह भी कहे कि पण्डित नेहरू के लिए 1948 का वर्ष अत्यन्त कष्टकारी है, ग्रह इतने भारी हैं कि उनके जीवन के लिए घातक हो सकते हैं।' इस प्रचार का उद्देश्य जनता की मानसिकता को एक नया रूप देना था। कोहली यद्यपि इन संस्थाओं की सहायता करता है, लेकिन अन्त में वह महसूस करता है कि विदेशी ताकतें देशी ताकतों आर० एस० एस० और हिन्दू महासभा के साथ मिलकर नेहरू सरकार को गिराने के लिए दृढ़ संकल्प हैं। इन संस्थाओं के फासिस्ट चरित्र को लेखक ने बड़ी बारीकी से प्रस्तुत किया है और गांधी की, हत्या की जिम्मेदार शक्तियों के चरित्र को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।

उपन्यास में यह स्वर बहुत ही मुखर रूप से अभिव्यक्त हुआ कि गांधी जी की हत्या के लिए राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और हिन्दू महासभा ने विदेशी शक्तियों के साथ मिलकर सक्रिय भूमिका अदा की। लेखक ने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि स्वतन्त्रता दिलवाने में गांधी जी ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी इसलिए वह एक पखुड़ी है जो कोमल है लेकिन बहुत प्रखर है। इतनी प्रखर कि उसके आह्वान से सारा देश उठ सकता है।

इस प्रकार उपन्यास, विभाजन के दौरान साम्प्रदायिक दंगों को लेकर गांधी जी की हत्या तक की स्थितियों को सामने रखता है। उपन्यासकार इन स्थितियों का विवेचन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करता है और घटनाओं के अन्तर्विरोधी स्वरूप को उद्घाटित करता है। इसलिए यह उपन्यास विभाजन के सन्दर्भ में

लिखे गए अन्य उपन्यासों से भिन्न है। भिन्न इस अर्थ में कि अन्य उपन्यासकारों ने इन स्थितियों की जिम्मेदार शक्तियों की तलाश अपने देश में ही की जबकि दामोदर सिंह नरूला ने इन देशी शक्तियों के विदेशी शक्तियों से सम्बन्ध को भी उद्घाटित किया है।

लौटे हुए मुसाफिर

'लौटे हुए मुसाफिर' विभाजन के संदर्भ में लिखा गया विशिष्ट उपन्यास है। विशिष्ट इसलिए कि जहां भीष्म साहनी, यशपाल, राही मासूम रज़ा मध्य-वर्ग और निम्न मध्यवर्ग के जीवन को विभाजन के संदर्भ में देखते हैं वहां कमलेश्वर मजदूरों व अपनी रोजी रोटी के लिए संघर्ष करते लोगों के जीवन को विभाजन के संदर्भ में देखते हैं। ये लोग पाकिस्तान का अर्थ नहीं जानते लेकिन पाकिस्तान के कारण उत्पन्न हुई नफरत के शिकार अवश्य होते हैं।

उपन्यास में लेखक ने कस्बे की बस्ती की कहानी कही है जिसमें सदियों से हिन्दू और मुसलमान परस्पर भाईचारे, प्रेम और सद्भावना से रहते चले आ रहे थे, लेकिन विभाजन के बाद यह बस्ती उजड़ गई, क्योंकि इसमें नफरत, शक, बदहवासी फैल चुकी थी। इसके बारे में लेखक लिखता है, 'इस शहर में एक बूंद खून नहीं गिरा, किसी मोहल्ले पर धावा नहीं हुआ, किसी ने किसी को नहीं मारा, किसी ने किसी को गाली तक नहीं दी, मस्जिदों में लड़ाई की तैयारियां नहीं हुईं, मन्दिरों में ईंट पत्थर इकट्ठे नहीं हुए, जो बदमाश रोज पिटते थे उन्हें भी किसी ने नहीं पीटा। लेकिन भीतर-ही भीतर एक बड़ा भूचाल आ गया। बड़ा भयानक भूचाल, जिससे बस्ती की चूलें हिल गईं और भीतर-ही भीतर कुछ बिगड़ गया था। मिली इमारतें ढह गई थी। अपनेपन का जज्बा मर चुका था। नफरत की आग ने इस बस्ती को निगल लिया था।' यह नफरत की आग फली कैसे? इसके लिए लेखक 'इतिहास' में जाता है और बताता है कि 1857 में अंग्रेजों से लोहा लेने के लिए हिन्दू और मुसलमान एक साथ खड़े हुए थे। उस समय दोनों मिल-जुल कर रहते थे। एक-दूसरे के त्यौहारों में शरीक होते थे, लेकिन विद्रोह के बाद धीरे-धीरे ये नफरत की चिंगारियां उदित हुईं और 1947 में अपनी चरम परिणति पर पहुंची।

देश का सामान्य मुसलमान, पाकिस्तान की अवधारणा से परिचित नहीं था। वह कहां बन रहा है क्यों बन रहा है, कैसे बन रहा है, इन सबसे वह अनभिज्ञ था। लौटे हुए मुसाफिर मुसलमान पाकिस्तान के बारे में कुछ नहीं जानते, वे तो सिर्फ इतना जानते हैं कि एक आदमी मोहम्मद अली जिन्ना है जो मुसलमान तो है लेकिन नमाज नहीं पढ़ता। बस्ती में पाकिस्तान का प्रचार अलीगढ़ से आने वाला सियासी कारकून करता है। वह इन मुसलमानों को

बताता है कि मुसलमानो के लिए अलग से एक नया मुल्क बसाने के लिए संघर्ष चल रहा है जिसमे सभी मुसलमान पूर्णत सुखी रहेंगे। वह कांग्रेस को हिन्दू जमात कहकर उसकी निंदा करता है। यह सियासी कारकून उन मुसलमानो के जेहन मे यह बिठाने की कोशिश करता है कि पाकिस्तान लेने के लिए हमे कुर्बानियां देनी होगी। लेकिन बस्ती के मुसलमान उसकी इन बातो मे नही आते। वे सिर्फ इतना जानते हैं कि असली लडाई अमीरी और गरीबी की है।

पाकिस्तान बनने की मांग 1940 मे उठी और 1947 मे अपनी चरम परिणति पर पहुंची। इसी के समानान्तर ही साम्प्रदायिक तनाव देश मे विकसित हुआ जिसके लिए एक तरफ मुस्लिम लीग 'इस्लाम खतरे मे है' की दुहाई देती रही तो दूसरी तरफ राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ व हिन्दू महासभा, हिन्दू राष्ट्र व हिन्दू धर्म का गुणगान करते रहे। ज्यो ज्यो मुस्लिम लीग की तरफ से पाकिस्तान की मांग जोर पकडती गई त्यो त्यो आर० एस० एस० शिवाजी और महाराणा प्रताप की कुर्बानियो को याद दिलाकर साम्प्रदायिक उत्तेजना और मुसलमानो मे नफरत फैलाने का काम करती रही। इस संदर्भ मे लेखक लिखता है 'हिन्दू राष्ट्र ने आज तीसरी आंख खोली है। वे सब इसमे भस्म होगे जो विदेशी हैं। हमे दुनिया की कोई ताकत नही रोक सकती। हम शेरो की औलाद हैं। शिवाजी, महाराणा प्रताप और लक्ष्मीबाई की संतान हैं। बहादुरी मे ताकत है और बहादुर वही है जो हिन्दू है।' आर० एस० एस० के इस आह्वान से दहशतपूर्ण वातावरण सामने आया। उपन्यास मे लेखक साम्प्रदायिक दंगो के दौरान हुई हिंसा का वर्णन नही करता लेकिन साम्प्रदायिक दंगो के कारणो का संकेत अवश्य करता है।

बस्ती मे साम्प्रदायिक तनाव धीरे धीरे विकसित होता है और एक दिन इतना बढ जाता है कि अचानक लोग अपना कारोबार जल्दी-जल्दी बंद करने लगते हैं एक-दूसरे से बिना दुआ-सलाम किए निकल जाते हैं, तब हिन्दू मुसलमान के तांगे मे नही बैठता। बाहर से तो ये तमाम लोग सद्भावना प्रकट करते हैं, पाकिस्तान को लेकर हो रही घटनाओं पर चिन्ता प्रकट करते हैं लेकिन अन्दर-ही-अन्दर दो दायरो मे बंट चुके होते है। वे प्रेम, इन्सानियत, भाईचारे सबको भुलाकर सिर्फ हिन्दू या मुसलमान रह जाते हैं और इसलिए वे एक-एक करके बस्ती छोड देते हैं, इसलिए नही कि पाकिस्तान मे उनके लिए सुविधाएं हैं बल्कि इसलिए कि बस्ती मे नफरत और दहशत पहले से ज्यादा तीव्र हो चुकी है।

उपन्यास मे लेखक ने यह स्पष्ट कर दिया है कि सामान्य मुसलमानो का पाकिस्तान के प्रति कोई विशेष लगाव नही है। नफरत के कारण वे बस्ती तो छोड देते हैं परन्तु पाकिस्तान नही जाते। सुबराती आगरा चला जाता है। चमन वही चंगी मे चपरासी हो जाता है। वे लोग इस बस्ती को छोडकर अन्य शहरो

मे चले गए लेकिन पाकिस्तान नही गए और जो लोग पाकिस्तान गए भी वे इस बस्ती को न भुला सके। इसीलिए तीन बरस बाद इफ्तिकार-मेला देखने के बहाने हिन्दुस्तान आता है और तब इस बस्ती मे भी आता है। 14-15 साल बाद बशीर, बाकर, रमजानी, फतह वापस इसी बस्ती मे आते है—मजदूरी करने। जिन घरो को नफरत के कारण उनके बुजुर्ग छोड गए थे उन्हीं घरो मे वे फिर आकर बसना चाहते है। पाकिस्तान इन्ही मजदूरो के लिए विडम्बना बन गया। यह विडम्बना दो चार लोगो को नही वरन् हजारो-लाखो लोगो को भोगनी पडी, जो अपने घर से भी उजड गए और पाकिस्तान जाकर भी व्यवस्थित नहीं हो पाए।

काले कोस

विभाजन का सबसे बडा अभिशाप देश की उस जनता को भोगना पडा जो मूलत गावो मे रहती थी और 'पाकिस्तान' जैसे राजनतिक शब्दो को नही समझती थी। शहरो मे उतने बडे स्तर पर साम्प्रदायिक दगे लूट-मार और मार-काट नही हुई जितनी कि गांवों म हुइ। पूर्वी और पश्चिमी पजाब मे कोई भी गाव ऐसा नही था जहा सिफ मुसलमान रहते हो या सिफ हिन्दू। सबसे ज्यादा विकट स्थिति वहां उत्पन्न हुई जहां हिन्दू और मुसलमान एक साथ रहते आ रहे थे और उनमे परस्पर भाईचारा था।

बलवन सिंह उन चारगाव—मागट, रत्तह, माधवक, मुल्ला—की कहानी कहते हैं जहा हिन्दू और मुसलमान सदियो से एक साथ रहते चले आ रहे थे। चारगाव मे रहने वालो के जीवन-व्यापार को लेखक ने विभाजन से पहले और बाद के सदर्भो सहित पाठको के समक्ष प्रस्तुत किया है और इसके माध्यम से पाकिस्तान की उस घणास्पद राजनीति का विरोध किया जिसने व्यापक स्तर पर हत्याए करवाइ और दोनो देशो की आर्थिक व्यवस्था को तहस-नहस कर दिया।

उपन्यास का प्रारम्भ विभाजन से पहले के गांवो मे होने वाले जीवन-व्यापार से होता है। चारगाव के हिन्दू और मुसलमान सयुक्त रूप से मिल-जुल कर रहते चले आ रहे थे। चूकि चारगाव शेखूपुरा जिले से काफी दूर था इसलिए ये लोग वास्तविक खबरो से अवगत नही हो पाते थे और अखबारो मे छपी हुई खबरो पर विश्वास करना नही चाहते थे क्योकि अखबारें खबरो को बढा चढा कर प्रस्तुत करती हैं। यद्यपि लाहौर, कलकत्ता, नोआखली और दिल्ली के साम्प्रदायिक दगे अपनी पराकाष्ठा पर थे लेकिन चारगाव के हिन्दू और मुसलमानो मे कोई तनाव नही था। वस्तुत देश के जिन भागो मे साम्प्रदायिक दगे नही हुए थे वहा पर भी साम्प्रदायिक तनाव उत्पन्न हो गया था। ऐसे स्थानो पर हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे से सशकित रहने लगे थे और भीतर ही भीतर दूसरे सम्प्रदाय से अपनी सुरक्षा के प्रयत्न करने लगे थे। चारगाव मे तना।

करीमू के आने से पैदा होता है जिसकी बिरसासिंह से व्यक्तिगत दुश्मनी है। इस दुश्मनी को करीमू साम्प्रदायिक रंग देता है और अपने सम्प्रदाय वालो की सहायता से बिरसासिंह से बदला लेना चाहता है। इसके लिए वह गाव के तमाम मुसलमानो को सिखो के खिलाफ भडकाता है और दलील देता है कि नोआखली में हिंदुओ ने मुस्लिम औरतो पर अत्याचार किए इसलिए मुसलमानो का यह मजहबी फर्ज है कि वे इस अपमान का बदला लें। लेखक स्पष्ट कर देता है कि ये दंगे एक निश्चित योजना के तहत करवाए जा रहे थे और इस योजना के बीज बहुत पहले से ही बो दिए गए थे, व्यापक प्रचार द्वारा किसान मजदूर और गरीब जनता की धार्मिक भावना को उभारा गया था। लेखक, साम्प्रदायिक दगो के मूल म काय कर रही राजनीति को उदघाटित करता है। सूरतसिंह के माध्यम से वह कहता है 'जो कुछ हुआ उसमें मुस्लिम जनता का दोष नही है। यह सरासर अग्रेज की शरारत है बल्कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की शरारत है जो आज भोली-भाली जनता का ध्यान भूख, प्यास, पूजी के गलत बटवारे और पूजीपतियो के अन्यायो और अत्याचारो की ओर से हटाकर उन्हें धम के नाम पर भडका रही है और एक-दूसरे के खून का प्यासा बना रही है।'

बलवतसिंह साम्प्रदायिक दगो के कारण चारगाव मे विकसित मुस्लिम मानसिकता की ओर भी सकेत करते हैं। यह एक वास्तविक सच्चाई थी कि साम्प्रदायिक दगो के दौरान गाव के हिंदू और मुसलमानो ने आपस म मार काट नही की बल्कि अपने सम्प्रदाय वालो से एक-दूसरे की हिफाजत की। करीमू मुसलमानो को उत्तेजित करता है कि चारगाव मे काफिरो को रहने का कोई अधिकार नही लेकिन गाव के मुसलमान उसकी बातो को नही मानते। व्यक्तिगत दुश्मनी का बदला वह सम्प्रदाय वाला की सहायता से लेना चाहता है। करीमू के समानान्तर ही लेखक ने बिरसासिंह को खडा किया है जो साम्प्रदायिक सम्बन्धों में नही वरन् सामाजिक सम्बन्धो मे आस्था रखता है।

'बिरसासिंह' उपन्यास में प्रमुख पात्र के रूप मे उभरकर सामने आता है। यद्यपि वह डाके डालता है लेकिन साम्प्रदायिक वातावरण मे अपने गाव वालो की सहायता करता है। गाव के हिन्दू और मुसलमाना की सुरक्षा के लिए वह स्वय को खतरे में डालने से नही हिचकता।

चारगाव मे पेन्नीरैसिंह जसे अनेक परिवार 'पाकिस्तान' का अथ नही समझते लेकिन विभाजन की विभीषिका के शिकार होते हैं। इन लोगो को इनके घरो से अलग कर शरणार्थी कैम्पो मे फेंक दिया गया। जहा 15 दिन तक इतजार करने के बाद अमतसर जाने वाली गाडी आती है जिसम चालीस आदमियो के बैठने के स्थान पर सकडा आदमी भर जाते हैं। विभाजन के दौरान सबसे अधिक त्रासद स्थिति रेलगाडियो मे उत्पन्न हुई, जहा मजहब की आड म

सामूहिक कत्लेआम किया गया। जिस गाड़ी में पेशोरेसिंह का परिवार अमृतसर जाता है वह गाड़ी रास्ते में काट दी गई। शरणार्थियों को सुरक्षित देश की सीमा तक पहुँचाने के लिए जो प्रयत्न सरकार ने किए थे वे इतने कम थे कि प्रभावहीन और निष्क्रिय साबित हुए थे। पूरी गाड़ी की सुरक्षा के लिए तैनात चन्द सिपाहियों से न तो दंगाई डरे और न ही इन चन्द सिपाहियों ने बलवाइयों को रोकने के लिए कोई प्रयत्न किए।

लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि देश की आजादी का सबसे बड़ा मूल्य उस निरीह और भोली जनता को चुकाना पड़ा जो पाकिस्तान का अर्थ नहीं समझती थी और सदियों पुराने अपने घरों को छोड़ना नहीं चाहती थी। इस जनता से सहानुभूति रखकर लेखक पाकिस्तान की राजनीति का विरोध करता है। सामाजिक सम्बन्धों में यह राजनीति किस हद तक प्रभावशाली हुई इसका संकेत लेखक बिरसा और शिराज के सम्बन्धों के माध्यम से करता है।

बिरसासिंह और काबुल सिंह दोनों दोस्त हैं। दोनों मिलकर डाके डालते हैं। दोनों बहुत ही होशियारी से पाकिस्तान की सीमा पार करते हैं। ये लोग हिन्दुस्तान रेल से न जाकर लारियों से जाते हैं और अपने मुसलमान दोस्त मोहम्मद की सहायता से हिन्दुस्तान की सीमा पर सुरक्षित पहुँचते हैं। अपने अन्य सिख दोस्त के घर शिराज की सुरक्षा की व्यवस्था कर वह सुल्तान की खोज में निकल जाता है। बिरसासिंह का सिख दोस्त भी अपने धर्मावलम्बियों से शिराज की सुरक्षा करता है लेकिन बाह्य परिस्थितियों के दबाव से वह शिराज को सलाह देता है कि यहां अब ज्यादा दिन रहना खतरे से खाली नहीं है। शिराज अंधेरी रात में अपने परिवार सहित पाकिस्तान की तरफ रुख करता है। बिरसासिंह भी पीछे-पीछे उसके कदमों के चिह्नों को खोजता हुआ उस तक जा पहुँचता है और उसे सुरक्षित पाकिस्तान की सीमा तक पहुँचाता है। पाकिस्तान की सीमा पर पहुँचने के पश्चात् शिराज भौंचक्का रह जाता है, 'कहां है वह पाकिस्तान जिसके लिए इतनी मार-काट हुई, कहां है वह पाकिस्तान जिसके लिए उसे अपना पुश्तैनी घर छोड़ना पड़ा। वही हवा, वही जमीन, वही मिट्टी। शिराज ने क्षितिज से निगाह हटाकर दोनों हाथों में खेत की भुरभुरी मिट्टी को उठाया और बड़ी तल्लीनता से देखता रहा। उसने दबाकर उसके स्पर्श का अनुभव किया। उसने हवा में सूंघा। लम्बी चौड़ी जाल की भांति फैली हुई मेड़ों पर निगाह दौड़ाई जो एक दूसरे को काटती-छांटती धुंधले क्षितिज में खो गई थी लेकिन शिराज की निगाहें पाकिस्तान की जमीन, पाकिस्तान की मिट्टी, पाकिस्तान की हवा खोज रही थी। पाकिस्तान कहां था।' बलवन्तसिंह ने स्वयं इस सदर्भ में लिखा है, 'शिराज जब खानदान समेत हिन्दुस्तान से भागता है तो आखिरकार यह जानकर उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता कि वह पाकिस्तान पहुँच गया—

लेकिन फ़ौरन ही वह भौंचक्का रह जाता है—वह समझ नहीं पाता कि असली पाकिस्तान कहां है। इस शब्द का मतलब क्या ?—वही ज़मीन, वही आकाश, वही मिट्टी वही तारे ।

यह प्रश्न ही उपन्यास मे केन्द्रीय रूप से उभरकर सामने आया है। शिराज दूर दूर तक पाकिस्तान को तलाशने की कोशिश करता है। शिराज और विरसा अब दो देशो के वासी बन चुके थे, विरसे ने उसे मीलो दूर निगाहें दौडाते देख अपनी बाहो मे समेटने का यत्न करते हुए कहा, 'सिराजू तेरे-मेरे देश मे इतनी दूरी नही है। तू नाहक इतनी दूर-दूर तक निगाहें दौडा रहा है। अब तो तुम पाकिस्तान पहुच चुके हो, क्या तुम समझे बैठे थे कि पाकिस्तान पहुचने के लिए नदी पहाड फादने पडेंगे।'

इस प्रकार 'काले कोस' उस साम्राज्यवादी साजिश का विरोध करता है जिसके तहत लाखो लोगो को अपने घर से बेघर होना पडा। उपन्यास मे लेखक का उद्देश्य यह दिखाता है कि साम्प्रदायिक वातावरण और मजहबी कट्टरता के बावजूद भी मानवीय मूल्य समाप्त नही हुए। उपन्यास के प्रत्येक पात्र की कहानी से यह बात उभरकर सामने आती है।

और इन्सान मर गया

रामानद सागर का उपन्यास 'और इसान मर गया' विभाजन के सदर्भ मे हुए साम्प्रदायिक दगो को आधार बनाकर लिखा गया है। विभाजन के दौरान पश्चिमी और पूर्वी पजाब मे विशेष रूप से लाहौर मे साम्प्रदायिक तनाव अत्यधिक तीव्र रहा। इस तनाव के कारण हिंसा व स्त्रियो पर अमानवीय अत्याचारो के व्यापक हादसे हुए। इन तमाम हादसों को लेखक ने अपने उपन्यास मे स्थान दिया। दगों की बबरता का चित्रण कर, मानवीय मूल्यो पर व्यग्य करना एक बात है और दगो को अविश्वसनीय बनाकर प्रस्तुत करना दूसरी बात है। रामानद सागर ने इस उपन्यास मे विभाजन की ट्रेजेडी को एक रूमानी स्तर पर देखा है। इसलिए दगो का चित्रण विश्वसनीय नही लगता। लेखक न तो साम्प्रदायिक दगो के कारणो को पकड पाता है और न ही उन सदर्भो को रेखाकित कर पाता है जिनको आधार बनाकर साम्प्रदायिक तनाव प्रदान किए गए।

1947 के दौरान लाहौर मे मार काट सबसे अधिक और हिंसकपूर्ण तरीके से हुई क्योकि दोनो सम्प्रदाय के लोग यहा पर बराबरी की सख्या मे थे और दोनो सम्प्रदाय के लोगो का यहा कारोबार था। जमीन जायदाद और खेती थी। हिन्दू और मुस्लिम दोनो यह समझते थे कि लाहौर उनके कब्जे मे आएगा, इसलिए उन्होने एक दूसरे को यहा से भगाने की कोशिश की। उपन्यास की

घटनाओं का केन्द्र बिन्दु लाहौर है।

जब यह तय हो जाता है कि लाहौर पाकिस्तान में जाएगा तो लाहौर के हिन्दू व्यापारी किसी भी तरह अपने जान-माल सहित लाहौर से निकल जाना चाहते हैं। वे मुसलमान तांगे वालों को रुपयों का लालच देते हैं ताकि वे अपने सामान सहित सुरक्षित स्टेशन पर पहुंच जाएं लेकिन मोहल्ले में ही हिन्दू, मुसलमान कोचवान की निर्दयतापूर्वक हत्या कर देते हैं। हिन्दुओं के घरों में आग लगाने और उनकी हत्या करने के अनेक प्रसंग इस उपन्यास में प्रस्तुत किए गए हैं। लेखक ने इन तमाम संदर्भों का विरोध करने के लिए उपन्यास के प्रमुख पात्र आनंद को खड़ा किया है जो वैज्ञानिक दृष्टि से दंगों को न देखकर रोमानी दृष्टि से देखता है और कुछ भी कर सकने में असमर्थ रहता है। वह अपनी असफलता पर रोता है और मानवीयता की दुहाई देता है।

विभाजन की क्रूर यंत्रणा स्त्रियों को भोगनी पड़ी। यह यंत्रणा उन्होंने दो रूपों में भोगी। एक तो उनके साथ पाश्विक अत्याचार किए गए और दूसरे जब वे लुट पिट कर अपने घरों में पहुंची तो उनके परिवार वालों ने उन्हें रखने से इंकार कर दिया। स्त्रियों और बच्चों पर किए गए पाश्विक अत्याचार के अनेक दृश्य इस उपन्यास में देखने को मिलते हैं। विश्व के अनेक देशों में संक्रमणकालीन स्थितियों का सामना करना पड़ता है परन्तु यह कहीं नहीं सुना गया कि एक देश के लोगों ने दूसरे देश की स्त्रियों को सरेआम नंगा करके उनका जुलूस निकाला।

विभाजन के दौरान सबसे अधिक मार काट रेलगाड़ियों में हुई जहां पर निहत्थी जनता को सामूहिक रूप से कत्ल कर दिया गया। लेखक ने विस्तृत दृश्य प्रस्तुत कर इस विभीषिका को प्रस्तुत करना चाहा है। 14 अगस्त को अमृतसर से लाहौर पहुंचने वाली गाड़ी में कोई भी व्यक्ति जीवित नहीं बचता।

इस उपन्यास में न तो कोई कथानक उभरकर सामने आता है और न ही कोई चरित्र। लेखक न तो विभाजन के पूर्व की स्थितियों का मूल्यांकन करता है और न ही विभाजन के बाद की स्थितियों का। वह सिर्फ विभाजन के बाद हुई घटनाओं का चित्र प्रस्तुत करता है। प्रसंगों की अतिरंजना अविश्वसनीयता की हद तक पहुंच जाती है। उपन्यास के लेखक के पास, न तो वह दृष्टि है जो घटनाओं का विवेचन कर सके और न ही वह संवेदना है जो विभाजन से प्रभावित व्यक्तियों को सहानुभूति दे सके। उपन्यास की संवेदना इतनी ढीली और लचर है कि इसमें कोई भी कथा उभरकर सामने नहीं आती। लेखक सिर्फ दंगों का वर्णन कर कथा में त्रासदी तत्व उत्पन्न करना चाहता है। उपन्यास का 'आनंद' प्रमुख पात्र के रूप में उभरकर सामने आता है जो रोमांटिज्म के दायरे तक ही सीमित रहता है। दंगों के मूल कारणों को समझने के स्थान पर वह दंगों की भयावहता

देखकर उन पर आंसू बहाता है, बात-बात में रोता है, और अन्त में भावुकता के कारण मौलाना को भी मार देता है। मौलाना और आनन्द में लेखक ने इतनी विशेषताएं भर दी हैं कि वे वास्तविक जीवन के चरित्र नहीं दिखाई देते। उपन्यास में सघनता के स्थान पर वर्णनात्मकता की भरमार है और यह वर्णनात्मकता सामाजिक स्तर पर न रहकर रोमानी स्तर पर प्रकट होती है।

जुलूस

पाकिस्तान के निर्माण के समय, पंजाब के साथ साथ बंगाल का भी विभाजन किया गया, इसलिए वहां भी वही समस्याएं और वही मूल्य उत्पन्न हुए जो पंजाब में थे। बंगाल के विभाजन को केन्द्र में रखकर बंगला साहित्य में बहुतायत से लिखा गया लेकिन हिन्दी के साहित्यकारों ने भी बंगाल विभाजन से उत्पन्न शरणार्थियों की मन स्थिति को अपनी संवेदना का केन्द्र बनाया। फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास जुलूस बंगाल के शरणार्थियों की समस्या के विविध आयामों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।

उपन्यास में लेखक ने नोबीन नगर और गोडियर गांव के निवासियों की कहानी कही है। पूर्वी बंगाल में विभाजन के फलस्वरूप बंगाल के शरणार्थी बिहार में जाकर बस गए लेकिन उन्हें अपने घरों की याद निरंतर सताती रही। उन्हें नये देश की मिट्टी में, नये देश की फसलों में, रहन सहन में, कहीं भी अपने देश की छाप नहीं दिखाई देती। वहां के निवासी उन लोगों के साथ विदेशियों का सा व्यवहार करते हैं। बंगाल से निर्वासित ये लोग यह नहीं चाहते कि बिहार के लोग उन्हें 'पाकिस्तानी' कहकर उनकी उपेक्षा करें। इससे उनके स्वाभिमान को ठेस पहुंचती है।

परायेपन का अहसास प्रत्येक शरणार्थी परिवार को भोगना पड़ा। एक तरफ वे अपने देश से निर्वासित कर दिए गए तो दूसरी तरफ जिस देश में गए वहां के निवासियों से उन्हें उपेक्षा और तिरस्कार ही मिला। उन लोगों को नये स्थान पर, लोगों की कृपा पर निर्भर रहना पड़ा। बंगाल के निवासियों ने अपना नया गांव नोबीन नगर बसा लिया लेकिन स्थानीय निवासी उन्हें पाकिस्तानी ही समझते हैं और उनके गांव को पाकिस्तानी टोला कहकर पुकारते हैं। इससे विस्थापितों को यह लगता है कि पाकिस्तानी टोले कहने से वे मुसलमान हो जाएंगे जबकि वो खुद मुसलमानों से तीव्र घृणा करते हैं।

विभाजन के कारण ये लोग अपने देश को तो छोड़ आए लेकिन वहां की स्मृतियों को नहीं भुला पाए। जब वे पहले की स्थिति की तुलना आज की स्थिति से करते हैं तो अपनी दयनीय अवस्था को देखकर उनके मन में क्रोध और क्षोभ उत्पन्न होता है। उनकी इस मन स्थिति का चित्रण रेणु ने अनेक स्थलों पर

किया है। पवित्रता और कालीचरण दोनों शरणार्थी हैं, यद्यपि उन्होंने अपना नया गाव बसा लिया लेकिन पुराने गाव की यादों को वे नहीं भुला पाए। अतीत की उनकी स्मृतियों के साथ साथ रेणु ने उन सामाजिक स्थितियों का भी चित्रण किया है जिनका सामना उन्हें यहां आकर करना पड़ा। स्थानीय लोगों ने इन विस्थापितों को वह सम्मान और आदर नहीं दिया जिसकी इन्हें अपेक्षा थी। इसके स्थान पर उन्हें अपमान और तिरस्कार ही मिला। बगाल के शरणार्थियों ने, नोबीन नगर में अपना नया गांव बसा लिया। अपने लिए स्कूल खुलवा लिए लेकिन स्थानीय लोग इन शरणार्थियों को हेय दृष्टि से ही देखते हैं, उन्हें बगाली कहकर पुकारते हैं और उन पर आरोप लगाते हैं कि वे गो मास खाते हैं। इस आरोप को वे सहन नहीं कर सकते। गोपाल पाइन अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए कहता है, 'बगाली-बगाली कहें, हम सह लेंगे, जब बगाल हो गए हैं तो लोग कगाल ही कहेंगे। पाकिस्तानी बोलते हैं—यह भी सहा जा सकता है लेकिन यह सरासर गो मांस खाने की बात, इसे कसे सहा जा सकता है।'

विभाजन के कारण समाज मे एक नवीन चेतना विकसित हुई और वह यह कि विस्थापितों ने अधिक समय तक अपने भाग्य को दोष नहीं दिया बल्कि जीवन के कार्य क्षेत्र मे उतरकर अपने खोए हुए सम्मान को पुन प्राप्त करने की कोशिश की। 'इसके लिए ये लोग मेहनत मजदूरी करने से भी नहीं हिचके। विभाजन की सबसे अधिक यत्रणा स्त्रियों को भोगनी पड़ी इसलिए विस्थापित स्त्रियों ने स्वावलम्बी बनना चाहा। जिसके फलस्वरूप अनेक लड़कियां स्कूल-कालेज म अध्ययन के लिए जाने लगी, अनेक समाज सेविका के रूप म सामने आईं। विभाजन के कारण ही उनमे चेतना का विकास हुआ और उनके सोचने समझने की दृष्टि मे परिवर्तन हुआ, जिसके कारण अनेक प्रतिगामी मूल्यों के स्थान पर प्रगतिशील मूल्य अस्तित्व में आए। इन तमाम सदर्भों का विस्तृत वर्णन रेणु ने इस उपन्यास मे किया है। इस प्रस्तुतीकरण के कारण ही यह उपन्यास विभाजन पर लिखे गए अन्य उपन्यासों मे विशेष महत्त्व रखता है।

देश का बटवारा भारतीय जनता पर अकस्मात थोप दिया गया, इसलिए देश की जनता ने इसे स्वीकार नही किया। बटवारे के तूफान मे सदियो से अर्जित संस्कृति, सामाजिक मूल्य, जातीयता, धार्मिकता सभी कुछ बह गए। विभाजन के साथ जनता की अदला बदली भी जुडी हुई थी जिसका आधार मजहब को बनाया गया था, इसलिए एक ही संस्कृति म पली हुई समान भाषाए, समान बोलिया, समान जातीय सम्बन्धो को साम्प्रदायिक मूल्यो के नाम पर बाट दिया गया। इस त्रासदी से लाखो की आधारशिला ही डगमगा गई। सांस्कृतिक धरातल पर हिन्दुओ और मुसलमानो म कोई भेद नही था। पजाब का मुसलमान पजाबी भाषा बोलता था और बगाल का मुसलमान बगला। इसी तरह प्रान्तो के हिसाब से हिन्दुओ व मुसलमानो के खान-पान रहन सहन व आचार-व्यवहार थे। दोनो मे सांस्कृतिक समानता के संस्कार प्रबल थे और सदियो से एक ही प्रान्त मे रहने के कारण भावात्मक स्तर पर एक-दूसरे से जुडे हुए थे। विभाजन ने व्यक्ति के सांस्कृतिक संस्कारो को बहुत गहरे जाकर प्रभावित किया और उसके सम्पूर्ण अस्तित्व व भावसत्ता मे बुनियादी परिवर्तन उपस्थित किया। यह बुनियादी परिवर्तन विभाजन सम्बन्धी हिन्दी उपन्यासो मे पूर्ण द्वन्द्वात्मकता के साथ प्रस्तुत हुआ है।

तत्कालीन परिवेश अत्यधिक जटिल था इसलिए विभाजन जन्य संवेदना भी अनेक जटिल रूपो मे हिन्दी उपन्यासो मे देखने को मिलती हैं। तत्कालीन नव विकसित सामाजिक मूल्य, सरकार की नीतिया, शरणार्थी समस्या के प्रति सरकार का दृष्टिकोण व शरणार्थी होने की भावना से व्यक्ति की अन्तश्चेतना पर द्वन्द्वात्मक प्रभाव पडा। इसलिए कही व्यक्ति सामाजिक परिवेश को बदलने की कोशिश करता है तो कही इस परिवेश का आत्मसात कर अपनी दयनीयता का दोष अपने भाग्य को देता है।

विभाजन से यद्यपि अनेक समस्याए पैदा हुई, वहा कुछ स्वस्थ परिणाम भी उभरकर सामने आए। जनता की अदला-बदली से समाज मे नई चेतना विकसित हुई। विभाजन के कारण ही पजाब के निर्वासितो मे शिक्षित होने की भावना बलवती हुई। यह भावना स्त्रियो मे विशेष रूप से विकसित हुई क्योकि विभाजन

की जो यन्त्रणा उन्हें सहनी पड़ी वह पुरुषों को नहीं सहनी पड़ी थी और इसलिए उन्होंने स्वावलम्बी बनना चाहा। वे स्कूलों, कालेजों में शिक्षा के लिए जाने लगीं। विभाजन से संस्कारों में बुनियादी परिवर्तन हुआ। विभाजन की विभीषिका में अनेक पुरातनपंथी संस्कार बह गए।

विभाजन से सम्बन्धित उपन्यास आज एक इतिहास के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत है। इस साहित्य ने सामाजिक विकास के क्रम में प्रगतिशील भूमिका निभाई। बाद में आगे चलकर नई कहानी का विकास हुआ जिसमें व्यापक रूप से सामाजिक, पारिवारिक सम्बन्धों का बिखराव, मूल्यों का टकराव व सामाजिक पीड़ा आदि की अभिव्यक्ति हुई। इन सम्बन्धों और मूल्यों के बिखराव का एक स्तर तो विभाजन के आधार पर लिखे गए उपन्यासों में देखने को मिलता है और दूसरा स्तर नयी कहानी में, जो विभाजन जन्य संवेदना का ही परिणाम है।

●●